ग़दर

ऋषभचरण जैन की लौह-लेखनी द्वारा लिखा जाकर पहले जब 'ग़दर' प्रकाशित हुआ, तब इस उपन्यास के यथार्थवादी चित्रण को हिन्दुस्तान की विदेशी सरकार सह न सकी और इसे ज़ब्त कर लिया गया। तब से यह अप्रकाशित ही रहा है।

भारतीय स्वतन्त्रता के लिए लड़े गए पहले युद्ध की कहानी 'ग़दर' में लिखी गई है। इस उपन्यास में विदेशी राज्य को देश से निर्मूल करने के लिए रची गई योजनाओं, सामन्ती षड्यन्त्रों और जनता के रोष का रोचक विवरण आपको मिलेगा।

ग़द्र

ग़द्दर

ऋषभचरण जैन

ज्ञान पब्लिकेशन्ज़
७/१६ दरियागञ्ज, देहली

प्रकाशक :—
दिग्दर्शन चरण जैन,
ज्ञान पब्लिकेशन्ज़,
७/१६ दरियागञ्ज,
देहली।

दूसरी बार, १९५२

मू० दो रुपया आठ आना

मुद्रक,
रूप-वाणी प्रिंटिंग हाऊस,
दरबार गृह, दरियागंज,
देहली।

प्रकाशकीय

ग़दर आपके हाथ में है ! कैसा है ! कैसा बना !! यह सब पाठकों के सोचने का विषय है।

ऋषभ चरण जी हिंदी के पुराने लेखक हैं। उनका यह उपन्यास आज से प्रायः २० वर्ष पहले प्रथम बार प्रकाशित हुआ था। परन्तु तत्कालीन सरकार ने इसे अपनी नीति के विरुद्ध समझ कर प्रकाशित होने के साथ २ ही ज़ब्त कर लिया और इसका प्रचार रुक गया।

विदेशी शासकों ने क्रान्तिकारी तथा '१८५७' के प्रथम 'भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम' से सम्बन्धित प्राय सभी साहित्य को जब तब ज़ब्त कर लेना अपनी एक नीति बना ली थी। इसी की झपेट में श्री ऋषभ चरण जी की अनेक पुस्तकें भी आईं। प्रस्तुत उपन्यास 'ग़दर' भी उनमें से एक था।

जनहित को दृष्टिकोण में रखते हुए हम इस उपन्यास को पाठकों के समक्ष पुनः प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहे हैं। हमें पूरा विश्वास है, पाठकों की दृष्टि में हमारी यह मेहनत, अकारथ नहीं जावेगी।

—व्यवस्थापक

अङ्कुर

—: १ :—

मेम की फ़रियाद

एक लम्बा-चौड़ा कमरा है। एक बालिश्त मोटे गद्दे पर ऊनी क़ालीन बिछा है। उत्तर की ओर एक सिंहासन की शक्ल की चौड़ी कुर्सी रखी है। कमरे की छत पर उम्दा क़ीमती झाड़-फ़ानूस लटके हैं। दीवारों पर पत्थरों में बेल-बूटे काटने में बड़ी कारीगरी की गई है। कमरे के दक्षिण की ओर द्वार हैं, और पूर्व-पश्चिम के दोनों पार्श्वों में क़ीमती, गद्देदार कुर्सियाँ करीने-से सजी हैं। सिंहासन नुमा कुर्सी के पास-ही एक क़ीमती—परन्तु छोटी और ऊँची—कुर्सी और रक्खी है।

सिंहासननुमा कुर्सी पर धूँधू पन्त नाना साहब और दूसरी पर उनके मन्त्री अज़ीमुल्लाख़ाँ विराजमान हैं।

नाना साहब पीले रेशम की सुबुक और हल्की पोशाक पहने हुए हैं। पगड़ी भी बसन्ती है—पायजामा भी, अचकन भी—यहाँ तक कि जूता भी पीले रेशम का बना हुआ है।

अज़ीमुल्लाख़ाँ नंगे-सिर हैं, यूरोपियन पोशाक उनके शरीर पर है, पैरों में जूते नहीं हैं, बादामी रङ्ग के क़ीमती मोजे हैं।

आज बसन्त-पञ्चमी है। इसके उपलक्ष्य में आज नाना साहब एक बड़ा सह-भोज करने वाले थे। परम-मित्र कैप्टेन हिलर्सडन

और अन्य अँ जो अफ़सरों को कानपुर नेवता भेजा गया था। नेवता स्वीकार भी कर लिया गया था। परन्तु आज सुबह—ऐन मौक़े पर—सेनापति ह्वीलर और कैप्टन हिलर्सडन के पत्र मिले, जिसमें उन्होंने अत्यन्त नम्रता-पूर्वक भोज में शामिल होने से असमर्थता प्रकट की।

नाना साहब ने बड़ी तैयारियाँ की थीं। यह संवाद पाकर उन्हें बड़ी निराशा हुई। सब-कुछ तैयार हो चुका था, बहुत-से देशी मित्र भी आ चुके थे। यहाँ-तक-कि कानपुर के अंग्रेज—अफ़सरों के स्त्री-बच्चे भी पहिले दिन आ चुके थे। साहब-लोगों के आने का निश्चय था। अब अचानक यह समाचार... नाना साहब चकित होगये!

आख़िर उनकी आज्ञानुसार अज़ीमुल्लाख़ाँ दोपहर को कानपुर गये। अभी-अभी वहाँ से लौट करके नाना साहब से सब बातें कह रहे हैं।

नाना साहब ने कहा—"तो मेरठ में ग़दर होगया?"

"जी हाँ," अज़ीमुल्लाख़ाँ ने कहा—"फ़ौजें बाग़ी हो गईं, अंग्रेज़-अफ़सर, मेमें, बच्चे—सब—मौत के घाट उतार दिये गये। गिर्जे तोड़ डाले गये। साहब-लोगों के बंगले फूँक दिये। गये, और बाग़ी फ़ौजों ने दिल्ली की तरफ कूच कर दिया।"

कहते-कहते अज़ीमुल्लाख़ाँ की आँखें एक प्रकार के तीव्र-उत्साह से चमकने लगीं।

नाना साहब ने इस पर लक्ष्य न दिया। असल चिन्ता उन्हें

विद्रोह-समाचार की थी, और उससे अधिक चिंता अपने भोज की असफलता की। सच यह है, कि विद्रोह की बात को वे अधिक महत्व न दे सके, न इस बात की कल्पना कर सके कि 'तुच्छ' सिपाहियों-द्वारा न्याय-मूर्ति प्रतापी अंग्रेजों का बाल बाँका किया जा सकता है! कहने लगे—"मालूम होता है, मेरठ की कोई साधारण घटना विराटरूप होकर कानपुर पहुँची है···हाँ, और क्या-क्या बातें हुईं?"

अजीमुल्लाख़ाँ ने कहा—"यह मैं नहीं जानता—घटना साधारण है या असाधारण, पर कानपुर के साहब-लोगों की आँखें डर के मारे छोटी हो गई हैं। सब लोग मिलकर ऐसा उपाय सोच रहे हैं—जिससे मेरठ की आग उड़कर कानपुर न आन पहुँचे ······(कहते-कहते सम्हलकर) बेचारों को भोज में आने का होश कहाँ?"

नाना साहब ने कहा—"इतने चिन्तित हो रहे हैं?"

अजीमुल्लाख़ाँ बोले—"चिन्तित?—अजी होश उड़ रहे हैं! रूस-वालों से लड़ते—वक्त भी गोरों के चेहरे मैंने ऐसे भय-ग्रस्त नहीं देखे—जैसे अब। बेचारा बूढ़ा ह्वीलर अवश्य कुछ गम्भीर है—और तो सब बस······"

"तुमने कहा नहीं—'साहब, क्यों फ़िक्र करते हैं? मामूली बात है।' ?" नाना साहब ने साग्रह पूछा।

अजीमुल्लाख़ाँ ने कहा—"अजी, कहता तो तब, जब मेरी कोई सुनता। मुझे तो उन्होंने अपनी मीटिंग में शामिल तक न

होने दिया।"

"तो फिर?"

"तो फिर क्या?– हीलर और हिलर्सडन बाहर आये। हीलर ने गिड़गिड़ाकर सब बातें मुझे बताईं, और कहा–'महाराज से कहना, हमें क्षमा करें।' ...बेचारा बूढ़ा! ..चौवन बरस की नौकरी मे पहली बार चिन्तित हुआ है न!"

अजीमुल्लाख़ाँ यह कहकर आप-ही धीरे-से हँस पड़े!

नाना साहब ने हाथ मलते हुए कातर स्वर में कहा—"और तुमने मेरा सानुरोध अनुनय .....?"

"सब-कुछ महाराज, सब कह दिया था, पर..."

"फिर?"

"पर वे लोग तो जैसे पागल हो रहे थे! सेनापति हीलर तो अपनी बात जल्दी ख़त्म करके बिदा हुए, रह गये हिलर्सडन,— उन्होंने बड़ी धीरता से कास लेकर—जब आपके अनुरोध की बात सुनी—कहा—'महाराज से कहना, इस वक्त हम लोग घबराहट में हैं। अगर एकाध दिन में शान्ति की ख़बर आगई तो हम ज़रूर उनके साथ भोजन करेंगे।' बस यह कहकर वे भी चले गये"

नाना साहब ने ज़बर्दस्ती आशान्वित होकर कहा—"बस?— और कुछ नहीं कहा?"

"हाँ, एक बात और कही। कहा—'महाराज से कहना, हमारे बीबी-बच्चे उनके सिपुर्द हैं; कहीं उन्हें मेरठ के सिपाही उड़ा...

हाँ, कहने लगे—उन लोगों की रक्षा का भार आप पर है।"

....

नाना साहब बोले—"तो भोज को स्थगित कर दिया जाय" ?

"जैसी महाराज की इच्छा ?"

"आगत सज्जनों को सत्कार-पूर्वक रक्खा जाय ?"

'अवश्य।"

"कल तुम फिर जाओ, और उन-लोगों से कोई ख़ास दिन" पूछ आओ............।"

"जो आज्ञा।"

नाना साहब मन्त्री-महोदय के "जो आज्ञा" पर कान न देकर पहले सिल्सिले में कहते रहे—" ...कुछ नहीं जी, ग़दर,फ़दर कुछ नहीं है, व्यर्थ का भय है ! इतने दिन अत्याचारी मुसल्मानों के हाथों दुःख उठाकर तो हिन्दुस्तान को न्याय-शील कम्पनी के शासन में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, अब ग़दर, का क्या काम ? हूँ ! टुकड़-खोर सिपाहियों का यह साहस कहाँ ?..."

नाना साहब ने यह कहते-कहते उपेक्षा-से सिर हिला दिया।

अज़ीमुल्लाख़ाँ मन-ही-मन तिलमिला उठे। चेहरा सुर्ख़ होगया। आवेश में भरकर कुछ कहने जा-ही रहे थे कि ......

किसी ने कमरे में प्रवेश किया।

यह थी कर्नल टामसन की कन्या—सुन्दरी, तरुणी, युवती—जो नाना साहब की अतिथि-मेमों में से एक थी।

जब उसने कमरे में कूदकर, तड़पकर प्रवेश किया, तो उसका

चेहरा क्रोध से लाल हो रहा था, और नथने फूल रहे थे, और आँखों में अपमान के आँसू भरे हुए थे। एक रेशमी, कसा हुआ, ओछा गाऊन उसके शरीर पर था, पैरों में रबड़ के जूते, सिर पर गुलाब के ताजे फूलों की खुशनुमा टोपी, और दाँयें हाथ में एक लम्बा चाबुक था।

उसने आते-ही कड़ककर कहा—"नाना साहेब—!"

महाराज और मन्त्री — दोनों — चिहुँककर उसकी तरफ देखने लगे।

युवती ने अंगरेजी में कहा—'नाना साहेब, क्या आपने हमारी बे-इज्जती कराने के लिये हमें यहाँ बुलाया है?"

नाना साहब ने आश्चर्य्य-चकित होकर पूछा—"क्या हुआ मिस? शान्त होकर बताओ।"

कहते-कहते उन्होंने युवती को बैठने का सङ्केत किया!

इतने में मिस हैमिल्टन नाम की एक दूसरी युवती ने कमरे में प्रवेश किया, और वह आकर मिस टामसन के बराबर खड़ी होगई। बोली—"नाना साहब, रामचन्द्रराव ने लिली (मिस टामसन) का बड़ा अपमान किया है। हम-लोग आपके न्यौते पर भोज में शामिल होने आई हैं—अपना अपमान कराने नहीं!"

"रामचन्द्रराव ने?" नाना साहब के मुँह से साश्चर्य्य निकला।

"रामचन्द्रराव!!" अजीमुल्लाखाँ ने भी उसी लहजे में

दोहराया।

रामचन्द्रराव,-पेशवा बाजीराव के विश्वस्त मित्र, नाना साहब के आदरणीय सुहृद्, महा-पराक्रमी, बुद्धिमान,-कैसे इन छोकरियों का अपमान कर बैठे !!

मिस हैमिल्टन ने आँखें पूरी खोलकर अपने स्वाभाविक शान्त, परन्तु प्रभावशाली, स्वर में कहा—"जी हाँ, रामचन्द्रराव ने बड़ी बुरी तरह लिली को अपमानित किया। अगर आप हमारी फ़रियाद न सुनेंगे तो हम सबको इसी दम बिठूर छोड़ देना पड़ेगा, और कानपुर जाकर इस घटना की शिकायत करनी होगी।

पाँच-छः मेम कमरे में और घुस रही थीं; उन्होंने भी मिस हैमिल्टन की बात का एक-स्वर से समर्थन किया।

अज़ीमुल्लाख़ाँ होंठ काटने लगे। नाना साहब पीले पड़ गये। बड़ी मुश्किल से उन्होंने आगत महिलाओं को बैठने का संकेत किया।

गद्दे-दार कुर्सियाँ आगे खींच-खींचकर मेमें बैठ गईं! लिली टामसन सबसे आगे—सबसे भिन्न सूरत बनाये—अकड़ाकर बैठी।

नाना साहब ने मिस टामसन से कहा—'आप बताइये!"

मिस टामसन ने गुर्राकर कहा—"क्या?"

"आप बताइये," नाना साहब सहमकर बोले "क्या बात हुई?"

"क्या पूछते हैं नाना साहब......?" मिस टामसन ने आँसू

भरे नेत्र पूरे खोलकर इतना कहा और आगे कुछ कहने के पहिले ही मिस हैमिल्टन ने खुद बोलकर उसे रोक दिया। बोली—"नाना साहब, रामचन्द्रराव ने लिली के साथ बड़ा असभ्य व्यवहार किया।......उसने इन्हें किसानों मालियों, और नौकरों का नौकर बताया, और गालियाँ दीं !"

"गालियाँ .....?" नाना साहब ने चिन्ता और आश्चर्य के समुद्र में डूबते हुए कहा—"रामचन्द्रराव ने गालियाँ .....?"

"जी हाँ" मिस हैमिल्टन ने अपनी बात पर जोर देकर कहा—"बड़े घृणा-पूर्ण शब्दों में उसने लिली का तिरस्कार किया ...।"

अब की बार अजीमुल्लाख़ाँ बोले—"असल बात क्यों नहीं कहतीं मिस, तिरस्कार और गालियाँ की नौबत कैसे आई ?!"

अजीमुल्लाखाँ की तीव्र और गम्भीर आवाज़ से मिस हैमिल्टन मानों दब गई, लिली टामसन चिहुँक पड़ी, अन्य महिलायें सम्हलकर एक दूसरे का मुँह ताकने लगीं। किसी से जवाब देते न बना।

नाना साहब बोले—"हाँ, मिस, शुरू से कहिये, इस अनर्थ-कारी वैमनस्य का सूत्रपात कैसे हुआ ?"

मिस हैमिल्टन ने पहले से अधिक धीमे स्वर में कहना शुरू किया—"लिली हवा-खोरी के लिये जाना चाहती थी। उसने बाग़ में बैठे हुए कुछ नौकरों से पालकी ले आने को कहा। नौकर-लोग

पालकी ले तो आये, पर बाहर ले चलने को तैयार न हुए। लिली ने उन्हें धमकाया। ········· आप-ही सोचिये—बग़ैर धमकाये नौकर - लोग गुस्ताख़ हो जाते हैं, आज हमारी उपेक्षा करते हैं, कल आपकी इज्ज़त उतारने को तैयार हो जायँगे·······।"

नाना साहब ने गर्दन हिलाकर-कहा—"ठीक है फिर ?"

"फिर क्या ? आखिर नौकर-ही थे; बेचारे तैयार हो गये। मगर, इतने में-ही रामचन्द्रराव वहाँ आ पहुँचा। मैं भी वहीं खड़ी सब तमाशा देख रही थी। रामचन्द्रराव ने लाल-लाल आँखें निकालकर लिली को घूरा और डपटकर पूछा—'क्या बात है ?' लिली ने नम्रता-पूर्वक सब बात कही, तो उसने नौकरों से कहा—"तुम लोग अपना काम करो, इस दुष्टा की परवाह मत करो।'—फिर कड़क-कर लिली से बोला—तू जानती नहीं तू इनकी (मालियों, नौकरों की) नौकरनी है ? तुझे अपने मालिकों पर इस प्रकार हुक्म चलाते हुए लज्जा नहीं आती ? इन लोगों के टुकड़े खाती है, और इन्हीं के कन्धे पर चढ़ना चाहती है ? जा, भाग जा। जानती है, यह बिठूर है; कानपुर नहीं।" आदि-आदि ·····महाराज—अनेक अपमान-जनक बातें उसने कहीं !"

कमरे में उपस्थित सब लोग आधी मिनट तक साँस रोके, मिस हैमिल्टन के उत्तेजित वक्तव्य के प्रभाव का अनुभव करते रहे। नाना साहब पर तो मानों किसी ने बर्फ़ का पानी उँडेल दिया; मुँह से आवाज़ निकलनी असम्भव होगई।

आख़िर अज़ीमुल्लाख़ाँ की गम्भीर वाणी ने निस्तब्धता भंग

की—'आपकी बात मिस, समझ में नहीं आई······"

लिली टामसन ने अजीमुल्लाखाँ की बात काटने की धृष्टता की। कड़ककर बोली—"तो जनाब, इसका अर्थ है हम झूठ बोलते है ?···क्यों ?···यही मुझे भी आशा थी !···आप लोगों के पास मुझे न्याय नहीं मिल सकता।··चलो भाई इसी दम कानपुर के लिये कूच करते हैं; यहाँ हम लोगों का एक मिनट भी ठहरना मुनासिब नहीं है।"—यह कहते-कहते वह उठने का उपक्रम करने लगी।

नाना साहब ने आग्रह—पूर्वक लिली टामसन को बैठाया, और अजीमुल्लाखाँ से कहा—"हाथ कङ्गन को आरसी क्या; क्यों न रामचन्द्रराव को बुलाकर सब बात पूछ ली जाय ?" फिर मन्त्री की स्वीकृति पाकर, उन्होंने पहरेदार को आवाज दी, और रामचन्द्रराव को बुला लाने की आज्ञा दी।

रामचन्द्रराव आये। तवे-सी फूली हुई छाती, फ़ौलाद के डण्डों सी कलाइयाँ, पत्थर के खम्भे—से पैर, अध पकी दाढ़ी-मूछों से भरा हुआ शेर का-सा चेहरा, उन्नत ललाट, और बहुत बड़ा सिर लिये हुये उन्होंने कमरे में आकर बारी-बारी से नाना साहब और अजीमुल्लाखाँ की तरफ देखा, और तब उपस्थित मेमों पर एक उचटती हुई नजर डाल, म्यान में पड़ी हुई तलवार का मूठ धीरे-से छू, छाती निकालकर, गर्दन फुलाकर शान के साथ एक तरफ़ खड़े होगये।

सबकी आँखें एक मिनट-तक इस नर-केहरि पर अटकी रहीं।

फिर नाना साहब ने कठोर होकर कहा—

"रामचन्द्रराव······!"

"जी !!"

"यह मैं क्या सुन रहा हूं ?"

"क्या महाराज ?"

"तुम जानते हो, ये महिलाएँ हमारी अभ्यागत हैं ?"

"जी महाराज जानता हूं।"

"तुम जानते हो, अभ्यागत कितना आदरणीय होता है ?"

"जी महाराज, जानता हूँ।"

"बोलो फिर" नाना साहब ललकार कर बोले—"तुमने मिस टामसन का अपमान किस अधिकार पर, और क्यों किया ?"

रामचन्द्रराव ने एक बार घृणा के साथ तिरछी नजरों से मिस टामसन को देखा, और उसकी अकड़ देखकर धीरे से दाँत निकालते हुए नाना साहब से कहा—"महाराज मैंने जो किया, खूब सोच-समझकर, सब-कुछ अपने उत्तर-दायित्व पर किया। मैंने वही किया, जो मेरी स्थिति में कोई भी स्वाभिमानी मनुष्य करता। मैंने जो कुछ किया—मेरी जगह आप होते तो भी वही करते, मन्त्रीजी होते तो उससे भी आगे कुछ करते। और उनसे अधिक स्वाभिमानी कोई होता, तो उससे भी आगे करता। मेरी बेबाक और न्याय पूर्ण बात को यह अनुभव-शून्य, अल्हड़ छोकरी चाहे अपमान समझ ले, पर मैं आपको विश्वास दिलाता हूं, कि इस बच्ची से मेरा कोई भी व्यक्तिगत विद्वेष नहीं

है, और मैंने अपमान-पूर्ण समझकर कोई भी बात इससे नहीं कही थी।"

रामचन्द्रराव की गरज से सब दहल गये। केवल अजीमुल्लाखाँ के माथे पर उत्साह और हर्ष की शिकन दिखाई पड़ी। उन्होंने कहा—"रामचन्द्रराव, सब बात एक सिरे से कहो। और सच—सच कहो।"

"सुनिये," रामचन्द्रराव ने कहा—"बाग़ के कुछ माली, और नौकर अपने देहाती किसान–मित्रों सहित आज बसन्तोत्सव मना रहे थे। एक बरस के बाद बेचारों को यह हर्ष का दिन नसीब होता है। सब लोग सुख में निमग्न थे। इतने में यह नादान लड़की वहाँ आई, और उनमें से दस–बारह को अपने पास बुलाया, और पालकी बाहर निकाल लाने का हुक्म दिया। बेचारों को बुरा तो लगा, पर बिना एक शब्द–कहे पालकी निकाल लाये। तब इस लड़की ने कहा—'हम पालकी में बैठती हैं, तुम-लोग इसे उठा कर जङ्गल चलो।' महाराज ने उनको आज की छुट्टी दी है, वे लोग अपनी छुट्टी का इस प्रकार बलिदान करने को राज़ी न हुए, गिड़गिड़ाकर अपनी असमर्थता प्रकट की, और उन्होंने निवेदन किया—'यदि आपकी आज्ञा हो, तो पालकी के लिये बाहर से मजदूर बुला दिये जायँ। बस, इतनी बात सुनकर-ही इस लड़की का जवान खून खौल उठा, और उसने हाथ के चाबुक से उन ग़रीबों की खाल उधेड़नी शुरू करदी। मैं थोड़ी दूर परे खड़ा सब तमाशा देख रहा था। जब बेचारे माली और किसान पिटते

पिटते बिलबिलाने लगे, तो मैंने आगे बढ़कर इस अत्याचार में बाधा डाली।···बस, यही असली घटना है। इसी पर यह लड़की तुनक कर इस तरफ़ भाग आई।"

नाना साहब ने सब सुनकर मिस टामसन की तरफ़ देखा, और उसे कुछ बोलता हुआ न देखकर रामचन्द्रराव से कहा—"तुमने इनको गालियाँ नहीं दीं, और यह नहीं कहा कि नौकर लोग तुम्हारे मालिक हैं, और तुम इन लोगों की नौकर हो, और इनका टुकड़ा खाती हो?"

रामचन्द्रराव ने धीरे से खखारकर गला साफ़ किया, और अपने स्वभाविक गम्भीर स्वर में कहा—"गालियों की बात बिलकुल झूठ है। यह कन्या है। उस रूप में मैं इसे अपनी कन्या के समान समझता हूं, और समझता हूं कि इसको गाली देकर स्वयं अपनी कन्या को गाली दे रहा हूं। कन्या को गाली देना महाराज कापुरुष का काम है···"

"अच्छा," नाना साहब ने टोका—"तुमने उन्हें नौकरों का नौकर तो बताया; या इससे भी इन्कार करते हो?"

"देखिये," रामचन्द्रराव ने ग्लानि-युक्त होकर कहा—'मेरे मुँह से ऐसी बातें नहीं निकल सकतीं। आप उन्हें दोहराइये भी न। झूठी बात सुनने के मेरे कान आदी नहीं हैं। इस पागल लड़की ने बड़ी ख़ूबसूरती से अमृत को विष बनाकर आपके सामने पेश किया है। मैंने जाकर इसे नम्रता-पूर्वक रोका। इसने चाबुक रोककर अपनी स्वेच्छा चारिता में बाधक बनने वाले

की—मेरी—तरफ़ सरोष देखा, और मैं लाचार होकर कहता हूं महाराज, एक बार इसने हाथ का चाबुक मुझे लक्ष्य करके ऊँचा किया फिर मैंने क्या किया, महाराज—जानते हैं?—मैंने इसे अतिथि समझकर केवल इसका ऊँचा उठा हुआ चाबुक पकड़ लिया, और कहा—बेवकूफ़! होश में आ।' इस उद्दण्ड बालिका ने मेरे व्यवहार को अपमान समझा—शायद इसीलिये कि मैं हिन्दुस्तानी हूं—क्यों मिस टामसन?—और दाँत पीसकर चिल्लाते हुए कहा—'हट जाओ सामने से सूअर तुम हमारे बीच में क्यों बोलते हो?' मैंने जबाब दिया—'नादान, मैं तुझे याद दिलाना चाहता हूं, कि यह बिठूर है; कानपुर नहीं, ये नौकर नाना साहब के हैं; टामसन के नहीं,—और इनमें से कई इसी प्रकार अतिथि होकर आये हुये हैं, जिस प्रकार तू।' इस पर इसने कहा—'ये सब—लोग गुस्ताख़ हैं, बदमाश हैं, मैं इनको खूब पीटूंगी, तुम जाओ।' इस पर किञ्चित् हँसकर मैंने कहा—'ये बदमाश और गुस्ताख़ तुम्हारी नजरों में हेय और तिरस्करणीय हैं! बुद्धिमान् बन बेटी जरा उदार होकर विचार—इन्हीं 'गुस्ताख और बदमाश' किसानों - द्वारा तेरा हमारा पेट पलता है, इन्हीं 'बदमाश और गुस्ताख़' किसानों की रोटी छीनने के लिये तू तेरा बाप और तेरी जाति के लोग हज़ारों मील से दौड़कर यहाँ आये हैं।' यह सुनकर यह मूर्ख लड़की और भी उत्तेजित हो उठी, और बोली—'मैं इनको खूब पीटूंगी। इन्होंने मेरी आज्ञा का उल्लङ्घन किया है। मेरी पालकी उठाकर

नहीं ले चल रहे हैं।' इसकी इस उच्छृङ्खलता पर मैं कुछ क्रुद्ध हो गया और कहा—'लड़की, अगर तुझे ज्यादा सैर का शौक़ है, तो अब्बाजान को लिखकर कानपुर से गोरों का एक दस्ता मँगवाले। जा, भाग, ये लोग नहीं जायेंगे।'……बस महाराज यही बात थी। इसमें एक अक्षर भी असत्य नहीं है। अगर हो, तो यह लड़की मेरे सामने कुछ कहने का साहस करे।"

रामचन्द्रराव ने यह कहते-कहते मिस टामसन पर एक थर्रा देने वाली नज़र फेंकी, और चुप होगये।

नाना साहब ने देखा—मिस टामसन पसीने-पसीने होगई है। जवाब कुछ बन नहीं पड़ रहा है। मेमों में हलचल मच गई है। और आँखों-आँखों में संकेत कर, वे लोग एक साथ उठने की तैयारी कर रही हैं।

अनर्थ हुआ चाहता था!…अचानक…

नाना साहब ने बहुत रूखे, कृत्रिम और कठोर लहजे में कहा—'रामचन्द्रराव, तुम इतने बुद्धिमान होकर भी यह बात भूल गये कि मिस टामसन अतिथि हैं;—तुम्हारी अपनी कन्या नहीं, जिससे इस प्रकार बात-चीत की जाय!'

रामचन्द्रराव ने कहा—"ग़लत है! मैंने अतिथि समझ कर ही ऐसा नम्र व्यवहार किया। अगर मेरी अपनी कन्या होती तो जानते हैं महाराज मैं क्या करता?—पहले दोनों कान पकड़ता, फिर दो तमाचे इस गाल पर, और दो इस पर लगाता (अपने दोनों गालों पर बारी से हाथ लगाया) और फिर शाम को घर

जाकर, प्यार से मनाकर, उसे रोटी खिलाता। अतिथि समझकर ही मैंने पहली बार अपने क्रोध का तिरस्कार और अपनी आत्मा पर बलात्कार किया!"

सारा कमरा कुछ क्षणों के लिए क़ब्रिस्तान की तरह निस्तब्ध होगया। नाना साहब निरुत्तर होगये। मेमें पत्थर की पुतली-सी जहाँ-की-तहाँ रह गईं। अज़ीमुल्लाखाँ मुँह फिराकर थोड़ा-सा मुस्कुरा दिये—मानो उन्होंने कोई आत्मिक आनन्द और गौरव लाभ किया।

सन्नाटा अब की बार भी अज़ीमुल्लाखाँ-द्वारा-ही तोड़ा गया। उन्होंने मिस टामसन की तरफ़ देखकर कहा—"क्या इनकी सब बातें ठीक हैं मिस?"

मिस टामसन ने दोनों होठ सिकोड़कर नज़ाकत के साथ भवें सुकेड़ लीं, और अजीब तरह से सिर में झटका देकर मिस हैमिल्टन की तरफ़ मुँह फेर लिया।

मिस हैमिल्टन ने कहा—"दीवान साहब, आप यह पूछकर एक प्रकार से हमारा अपमान कर रहे हैं, और आपके प्रश्न का मतलब यह है कि आप रामचन्द्रराव को सच्चा और निरपराध समझ रहे हैं।"

अज़ीमुल्लाखाँ ने माथे पर शिकन डालकर कहा—'मिस, यह आपका कुतर्क है। मैं आपसे केवल एक प्रश्न पूछता हूं। मैं रामचन्द्रराव को अभी न अपराधी कह सकता हूं, न निरपराधी। अगर आपके साथ उसने किसी प्रकार अशिष्टता की है, तो

अवश्य उसे दण्ड मिलेगा । उसके अपराध की मीमांसा करने में आपकी यह जल्दबाज़ी घोर सन्देह-जनक है यह समझ रखिये ।

मिस हैमिल्टन सहमकर चुप रह गई ।

अबकी बार एक अधेड़ मेम बोली—जिसकी एक आँख पर काला चश्मा लगा हुआ था और जिसकी चौड़ी टोपी पर हल्की सुर्ख़ पतली नक़ाब उल्टी हुई थी—"जनाब दीवान साहब, आपके इजलास में मासूम लड़कियों से जैसी असह्य और अपमान-जनक जिरह की जारही है—वैसी, हमारी तरफ़ की किसी विलायत में नहीं की जाती । आप जानते हैं, रामचन्द्रराव से लिली का कोई पुराना वैमनस्य नहीं है । इस प्रकार के उलझे हुए और घबरा देने वाले प्रश्नों का उत्तर देना इन बच्चियों का काम नहीं है । रामचन्द्रराव आपका मुँह-लगा है, इसीलिये वह इतना गुस्ताख़ है । अगर आप उसे मुनासिब सज़ा न देंगे, तो इस दुर्घटना के विरोध-स्वरूप हम-लोग—सब—बिना खाये पिये, इसी-समय कानपुर चली जायेंगी, और नाना साहब पूरी तरह इस घटना के ज़िम्मेवार होंगे !"

रामचन्द्रराव की आँखें लाल होगईं, अज़ीमुल्लाखाँ के माथे पर बल पड़ गये, नाना साहब के मस्तिष्क में अनेक भावनाओं का सम्मिलित तूफ़ान उठने लगा ।

गले का थूक सटककर नाना साहब बोले—"मैडम, नाराज़ होने की ज़रूरत नहीं है । आप देख रही हैं, अभी तक मैंने कोई

निर्णीत—मत नहीं दिया है। मैं आप सबको—मिस टामसन को भी—नम्रता पूर्वक विश्वास दिलाऊँगा—कि उचित न्याय किया जायगा। दीवान साहब उचित न्याय के लिये मुझसे अधिक उत्सुक हैं। वे जो पूछें–उसका उत्तर आप लोग निर्भीकता-पूर्वक दें। मुझ पर आपका यह बड़ा उपकार होगा।"

नाना साहब के संकेत पर अज़ीमुल्लाख़ाँ ने पुनः प्रश्न किया —"मिस टामसन, रामचन्द्रराव ने जो बातें कहीं, क्या वे ठीक हैं?"

मिस टामसन ने बाँया सीना उभारकर और बाँई आँख ज़रा दबाकर सरोष कहा—"दीवान साहब, आप मुझे अपनी झञ्झटी जिरह में फाँसना चाहते हैं—मैं खूब समझती हूँ। एक बात बार-बार कहने से कोई लाभ नहीं। जो कुछ मुझे कहना था—कह चुकी। अगर मैं सच्ची हूँ—तो अपराधी को सज़ा दीजिये, अगर झूठी हूँ, तो हम लोगों को विदा दीजिये। देखें, हम लोग कानपुर जाकर क्या कर सकती हैं।"

उसी वक्त उस अधेड़ स्त्री ने एक नया तर्क पेश किया—"दीवान साहब, अगर मानें कि लिली झूठी है, और रामचन्द्रराव सच्चा है, तो क्या उसका व्यवहार अपमान-जनक नहीं हुआ? एक बालिग़, समझदार लड़की को 'नादान,' बेवकूफ़'–आदि शब्दों से सम्बोधित करना, और टुकड़ खोर की गाली देना तथा नौकरों के सामने ही उनकी रोटियों से हमारा पेट पलना बताना, और सब के ऊपर—नाना साहब और आपके सामने–ही

इस प्रकार उद्दण्डता पूर्वक तमाचे मारने को कहना—क्या उसको अपराधी और दण्डनीय प्रमाणित करने के लिये पर्याप्त नहीं है? मेरी समझ में नहीं आता—आप बड़े भारी न्याय प्रिय बनने का ढोंग करते हुए भी कैसे इस प्रकार पक्षपात से काम ले रहे हैं, और असहाय स्त्रियों का अपमान करने वाले-को दण्ड देते हुए क्यों हिचकिचा रहे हैं! हमारी विलायत में यह शख्श होता—तो कम-से-कम तीन वर्ष की जेल का दण्ड पाता।"

इस धारावाहिक जोशीले भाषण के उत्तर में अज़ीमुल्लाखाँ ज़रा उत्तेजित होकर बोले—"मैडम, आप लोग हम पर रोब जमाकर न्याय का अन्याय नहीं करा सकतीं। रामचन्द्रराव से जितना मैं परिचित हूँ—आप लोगों में से उतनी कोई नहीं। मैं उसके स्वभाव को जानता हूँ। उसने मिस टामसन से जो कहा—बिल्कुल स्वभाविक, और क्षन्तव्य। मिस टामसन का यह सरासर अन्याय था—कि छुट्टी पाये हुए नौकरों और उनके अतिथि-जनों को मारें-पीटें, और ·····"

अधेड़ मेम लाल चेहरा बनाकर अपनी कुर्सी से उठ खड़ी हुई, और चिल्लाकर बोली,—"यहाँ हमारा न्याय नहीं होगा। सब लोग उठो, इसी-दम कानपुर चलते हैं।······नाना साहब, आपको शीघ्र-ही इसका फल भोगना पड़ेगा!"

सब मेंम—एक साथ खड़ी होगईं, और नाना साहब की ओर सक्रोध देखते हुए जाने को उद्यत हुईं।

नाना साहब भयभीत होकर खड़े होगये, और जोर-से बोले

—"मैडम्स, आप लोग बैठें। आपका इस प्रकार चला जाना मेरे साथ आपका बड़ा अन्याय होगा। रामचन्द्रराव अपराधी है, मैं उसे दण्ड दूंगा।"

यह कहते-कहते नाना साहब दर्वाजे पर जा खड़े हुए।

सब मेमें—एक-एक करके—फिर बैठ गईं।

नाना साहब आकर कुर्सी पर बैठे, माथे का पसीना पोंछा, और दो तीन बार लम्बी-लम्बी साँसें ली, इसके बाद मेमों को लक्ष्य कर कहा—"मैं सब सुन चुका। रामचन्द्रराव अपराधी है। मैं आप से पूछता हूँ—आप अब क्या चाहती हैं?"

सब तरफ़ से आवाज आई—"न्याय! न्याय!! न्याय!!!

नाना साहब ने कहा—"मैं मिस टामसन से प्रार्थना करूँगा कि वे रामचन्द्रराव को क्षमा करें।"

मिस टामसन ने होट सिकोड़कर आँखों की पुतलियाँ खींची और झटके-से सिर उठाकर अपराधी की तरफ़ देखकर कहा "मुझे अफ़सोस है,-मैं ऐसे गुस्ताख़ आदमी को माफ़ी नहीं दे सकती।"

नाना साहब के नेत्र कुछ क्षणों के लिये झुक गये, तब बिना रामचन्द्रराव या अजीमुल्लाखाँ पर दृष्टि-पात किये—गद्गद् कण्ठ और अश्रु-पूर्ण नेत्रों से—निर्णय दिया—"रामचन्द्रराव को तीन वर्ष का कारागार—दण्ड देता हूँ।"

रामचन्द्रराव ने सिर झुकाकर कहा—"जो आज्ञा।"

अजीमुल्लाखाँ ने कहा—"छिः।"

मेमों ने खुश होकर तालियाँ बजाईं॥

—: २ :—

ग़दर का सूत्रपात

धूँधूपन्त नाना साहब को सब जानते हैं। बाक़ी पात्रों का परिचय कराने के लिए कुछ बातों का उल्लेख करदें।

नाना साहब अन्तिम पेशवा बाजीराव के दत्तक पुत्र और उत्तराधिकारी थे। भाग्य-हीन नाना साहब अपनी पैत्रिक रियासत से तो तभी वंचित हो गए थे, जब बाजीराव पूना के सिंहासन से च्युत किये गये,—और बाजीराव के मरते ही उन्हें वह पेंशन भी मिलनी बन्द हो गई, पेंशनर बाजीराव के पुत्र की हैसियत में वे जिसके अधिकारी थे।

बाजीराव के साथ-ही-साथ नाना साहब भी बिठूर आ गये थे। भारतीय अंग्रेज-अफ़सरों से उनका बड़ा मेल-जोल था। पेंशन बन्द होने का समाचार सुनकर नाना साहब बड़े चकित हुए। अफ़सरों से, तत्कालीन वायसराय से, और अन्य अधिकारियों के सामने उन्होंने अपने अधिकार का रोना रोया। परन्तु मिला क्या? केवल आश्वासन, और अंग्रेजों की स्वभाव-सिद्ध सहानुभूति। हाँ, कुछ अंग्रेज-मित्रों ने एक आशाप्रद सलाह दी—कि नाना साहब अपना एक वाकपटु वकील लन्दन भेजें, जो नाना साहब के अधिकारों के लिए पार्लियामेण्ट में जाकर लड़े। नाना साहब ने इस

सलाह को मान लिया, और अपने सुयोग्य मन्त्री अज़ीमुल्लाख़ाँ को विलायत भेजा।

अज़ीमुल्लाख़ाँ ग़रीब माँ-बाप के बेटे थे। परन्तु अपने अध्यवसाय, शरीर-सौन्दर्य्य, पाण्डित्य और महत्वाकांक्षा के बल पर नाना साहब के मन्त्री-पद पर पहुंच गये थे। अज़ीमुल्लाख़ाँ की माता बड़ी विदुषी थीं। उन्हीं के सदुपदेशों ने अज़ीमुल्लाख़ाँ के हृदय में आरम्भ से-ही देश-भक्ति की लगन फूँक दी थी। बाल्य-काल के इस प्रभाव ने आगे चलकर कैसा विराट्-रूप धारण किया—यह प्रत्येक इतिहास-प्रेमी को मालूम है। हम भी उस विशाल-रूप का थोड़ा– बहुत दिग्दर्शन कराने की चेष्टा करेंगे।

नाना साहब अंग्रेजों का बड़ा मान करते थे। हमेशा दस-पाँच अंग्रेज उनके अतिथि रहते थे। पेन्शन बन्द हो जाने पर-भी नाना साहब अपनी जिन्दा-दिली और आतिथ्य-प्रियता से बाज न आ सके। बहुत से लोग कहते हैं—कि अंग्रेजों की इतनी खातिर-तवाज़ः वे इसलिए करते थे, कि विलायत लौटकर वे लोग उनकी पेन्शन के लिए आन्दोलन और सिफ़ारिश करें, परन्तु यह ग़लत है। नाना साहब बड़े प्रेमी आनन्दी जीव थे। खुद खाने की अपेक्षा दूसरे को खिलाने में उन्हें ज्यादा मज़ा आता था। बचपन में भी वे पचास-पचास बालकों को हर हफ्ते दावत दिया करते थे। बड़े होने पर उनकी इस आदत ने भी बड़ी शक्ल अख्तियार की, और परिणाम स्वरूप दर्जनों अतिथि रोज़ उनकी रसोई का स्वाद चखते थे। हाँ, अंग्रेजों पर उनकी विशेष कृपा या श्रद्धा थी।

इसका कारण यही था—कि अंग्रेजों का स्वभाव, व्यवहार, पह-नावा, और उनकी बात-चीत, सभ्यता और बुद्धिमत्ता—सब बातें—एक नवीनता लिये हुए थीं, और नाना साहब की हैसियत वाले कम्पनी के नौकर सब अंग्रेज़ ही थे।

अंग्रेजों का अधिक आदर करने का एक कारण और भी था। नाना साहब राज-काज के मामले में मुसलमानों को नितान्त अयोग्य मानते थे, और बहादुरशाह का पतन, समकालीन न्याय में धाँधलेबाज़ी, शासन में अव्यवस्था और मुसलमान कर्मचारियों के असह्य अत्याचार ये सब बातें ऐसी थीं, जिन्होंने एक नाना साहब ही नहीं अधिकांश हिन्दुओं के मन में यह धारणा पैदा कर दी थी—कि तत्कालीन गवर्नमेंट (मुग़लिया सल्तनत) का पूर्ण-रूप से पतन होकर उसकी जगह किसी नई सरकार की स्थापना होना उनके और उनके देश के लिए श्रेयस्कर होगा। अंग्रेज़ों की कृत्रिम और आकर्षक मृदुलता और छल-पूर्ण न्याय-प्रियता, मुक़ाबले में लोगों के सामने थी। अंग्रेज़ इसी कारण, नाना साहब और उनके जैसे विश्वास वाले, आदमियों के लिए आदरणीय और श्रद्धा-भाजन थे। अस्तु—

अज़ीमुल्लाख़ाँ योरुप गये। उन्होंने अत्यन्त योग्यता के साथ नाना साहब के पक्ष में वकालत की, आन्दोलन किया, पार्लियामेंट के सामने प्रभावशाली भाषण दिया। परन्तु सब व्यर्थ!—कोई सुनवाई न हुई!—और-तो-और जिन अंग्रेज़ों ने भारत में महीनों नाना साहब के टुकड़े चाबे थे, उन्होंने भी अज़ीमुल्लाख़ाँ से आँखें

चुराई और किसी प्रकार की सहायता देने से साफ़ इनकार कर दिया।

उस समय समग्र योरुप में, क्रीमिया-युद्ध के कारण, अशान्ति के भयङ्कर बादल मंडला रहे थे। योरुप के सब बड़े-बड़े देश इस युद्ध में भाग ले रहे थे। साहसी अजीमुल्लाख़ाँ अपने असल काम में अकृतकार्य होकर जब भारत लौटने लगे, तो इस भीषण युद्ध का कुछ दृश्य देखने का लोभ न त्याग सके।

अजीमुल्लाख़ाँ संग्राम-क्षेत्र में गये। वहाँ जाकर उन्होंने जो देखा—उससे उनकी आँखें खुल गईं, अंग्रेजों के बल और दृढ़ता की पोल खुल गई। अपने बर्बाद देश का भविष्य खुले-पृष्ठों की तरह उनकी आँखों आगे आगया। उन्होंने देखा—भारत वर्ष से आया हुआ करोड़ों मन अनाज संग्राम भूमि में जमा है। उसी के बल पर अङ्गरेज फ्राँसीसियों को मानों मोल ख़रीदे हुए थे। उसी के बल पर वे रूस की तोपों से मर-मरकर भी जी रहे थे, उसी के बल पर वे युद्ध-भूमि में अपनी शक्ति अक्षुण्ण बनाये हुए थे और भारतवर्ष से छीनी हुई रोटी के बल पर ही उन्होंने योरुप-भर में अपना आतङ्क जमा रखा था।

तब अजीमुल्लाख़ाँ की आँखों—आगे लन्दन के वैभवशाली होटल और भारत के ग़रीब, हल चलाने वाले, फटे हाल, किसानों के चित्र आने लगे। तब अजीमुल्लाख़ाँ ने देश की जड़ में लगे हुए कीड़े को पहचाना, और भारत का ख़ून पीने वाले अंग्रेजों को जूँ की शक्ल में देखा।

माता के उपदेशों की वे छोटी-छोटी लकीरें—वे धुँधले भाव—एकाएक प्रज्वलित हो उठे, पूर्व-जन्म के संस्कार और मातृ-भूमि की रक्षा करने का सङ्कल्प एक-साथ उदय हुए। अजीमुल्लाखाँ ने सब-कुछ देखा—समझा—और धधकती हुई युद्ध-भूमि में असंख्य नर-मुण्डों और रक्त की भीषण वर्षा के बीच खड़े होकर उस वीर ने मातृ-भूमि को स्वतन्त्र करने की भयङ्कर दृढ़ प्रतिज्ञा की, और क्रान्ति और विद्रोह की प्रचण्ड भावनायें लेकर उसने भारत में पदार्पण किया।

इधर भीतर-ही-भीतर भारत में क्रान्ति की आग सुलग रही थी। अनेक दूर-दर्शी युवक अंग्रेज़ों की चाल समझ कर प्रतिकार में व्यस्त थे। परन्तु आग अभी जमीन के भीतर-ही थी, अधिकार-मद में चूर अंगरेज़ उसे न देख सके। और भी लोग—जो अंग्रेज़ों को अपना और देश का कल्याण करने वाले, मित्र, और न्याय और शासन में राम के समान समझते थे—इस छिपी हुई आग को नहीं देख रहे थे,—न उन्हें देखने की-फ़ुरसत थी, न कामना।

परन्तु अज़ीमुल्लाख़ाँ ने इसे देखा, और सन्तोष की साँस ली। दोनों तरफ़ एक-ही लपट थी; क्रान्तिकारी उन से मिले, वे क्रान्तिकारियों से। उनके लिये काम करने को—बीज बोने को—क्षेत्र मिल गया, क्रान्तिकारियों को आगे बढ़ने का साधन। अज़ी-मुल्लाख़ाँ के सहयोग ने क्रान्ति-योजना में भयंकर तेज़ी पैदा करदी, और बड़ी सतर्कता और बड़े साहस के साथ एक बड़ी जबरदस्त देश व्यापी क्रान्ति का षड्यन्त्र होने लगा।

कम्पनी की शक्ति बहुत बढ़ गई थी। देश के अधिकांश भाग पर—लार्ड डलहौजी की संकुचित नीति के कारण—यूनियन जैक फहराने लगा था। अंग्रेज़ों का सेना-बल भी .खूब सम्पन्न हो गया था—और अज़ीमुल्लाख़ाँ ने देखा—अंग्रेज़ों की गति इसी प्रकार बढ़ती रही तो बहुत शीघ्र देश की प्रत्येक नस उनकी चुटकियों में आ जायगी।

काम बड़ी तेज़ी से शुरू हुआ। प्रत्येक शहर में षड्यन्त्र समिति के केन्द्र स्थापित किये गये। चुपचाप प्रचार होने लगा। हज़ारों युवक तीव्र उमङ्ग में भरकर क्रान्ति के समुद्र में कूद पड़े। प्रत्येक छावनी में समिति के सदस्य सिपाहियों के वेष में जा घुसे, और चुपचाप, बड़ी शीघ्रता से अंग्रेजी प्रभाव अपनी कमर से उतार फेंकने के लिये 'देश सेवा में तैयार होने लगा।'

प्रचार का काम सेनाओं में बड़ा सफल हुआ। समस्त उचितानुचित उपायों से सिपाही अंग्रेज़ों के विरुद्ध भड़काये जाने लगे। बन्दूकों के कारतूसों में गाय और सूअर की चर्बी की बात भी इन्हीं क्रान्तिकारियों के उपायों में से एक उपाय था।

अंग्रेज़ भी बेवकूफ़ नहीं थे। उन्होंने भी सेना का रुख़ देखा। यह बात कुछ कम चकित करने वाली नहीं थी। हर जगह के सिपाही अफ़सरों के प्रति सन्देह युक्त हो गये, हर एक सेना के सिपाही अंग्रेजों को अविश्वास और अश्रद्धा की नज़र से देखने लगे। कैसे यह काया-पलट हो गई?—हमारा मृदु कपट भी किस प्रकार इन पर खुल गया?—अंगरेज़ यही सोचने लगे।

परन्तु देश में क्रान्ति, अशान्ति, और असन्तोष की आग इतनी तीव्र हो उठी है—इसकी कल्पना किसी अभागे ने न की !—उनके ख़ून के प्यासे उनके चारों तरफ़ घूमते हैं—इसका ध्यान किसी बुद्धिमान को न हुआ।

इस क्रान्ति, इस विश्वास, इस अश्रद्धा में अज़ीमुल्लाख़ाँ का कितना हाथ था—इसकी कल्पना कोई न कर सका। हाँ, उनकी वाक्यपटुता, और भीतर की आग के फल-स्वरूप पैदा होने वाली तेजस्विता और प्रचण्डता के कारण अंगरेज़ उनसे दबते ज़रूर थे। अज़ीमुल्लाख़ाँ अन्य भारतीयों की भाँति अंगरेज़ों से दबते न थे, योरुप में, अंगरेज़ों के झुण्ड में खड़े होकर उन लोगों को फटकारने का साहस करने वाले अज़ीमुल्लाख़ाँ भारतीय अंगरेज़ों में किसी असाधारणता की धारणा न कर सके। उनके इसी दबंग-पन और निर्भय-स्वभाव के कारण अंगरेज़ उनका प्रभाव मानते थे, और सच कहें, तो इसी कारण इस बातकी वे लोग कल्पना न करसकते थे कि वे कैसी भयंकर क्रान्ति-योजना का संचालन कर रहे हैं।

बिठूर कानपूर से छः मील की दूरी पर स्थित है। अज़ीमुल्लाख़ाँ, नाना साहब, उनका कुटुम्ब उनके आठ हज़ार नौकर—सब लोग वहीं रहते थे। अज़ीमुल्लाख़ाँ बड़ी सतर्कता से सब काम करते थे। ग़दर-समिति में उनका आसन कितना गुरु है—यह वे समझते थे। स्वयं वे-सिवा मौखिक आज्ञा देने के—कुछ नहीं करते थे। पर उनकी इन मौखिक आज्ञाओं पर-ही समग्र देश ग़दर के लिये तैयार हो गया।

कानपुर में ग़दर-दल का संगठन खूब सन्तोष-जनक था। टीकमसिंह, दामोदरदास और अन्य अनेक ग़दर-दल के सदस्य फ़ौजों में घुस गये थे। नाना साहब के भाई बलराव, बाबा भट्ट, ताँतिया टोपी और रामचन्द्रराव आदि अनेक देश-भक्त वीरों का गुट्ट बिठूर में तैयार हो चुका था, फ़ौजों में विष फैल चुका था। सारांश सब कुछ तैयार था; केवल एक चिनगारी की कसर थी।

हाँ, अज़ीमुल्लाखाँ, अपने एक प्रयत्न में असफल रहे। नाना साहब पर अपनी बातों का प्रभाव वे न डाल सके। नाना साहब किसी भाँति अजीमुल्लाखाँ की ग़दर-पार्टी में शामिल होने को तैयार न दिखाई दिये। अज़ीमुल्लाखाँ ने खूब घुमा-फिराकर उनके मन की थाह ली, पर नाना साहब उन्हें पूरे अंगरेज़ भक्त दिखाई दिये। हारकर वे चुप हो गये, और मौक़े की बाट देखने लगे। अपने आतिथ्य सत्कार में व्यस्त भोले नाना साहब अजीमुल्लाखाँ के विषय में वास्तविकता से परिचित न हो सके, न उन्हें कभी इसकी जिज्ञासा-ही हुई—यह बात बता देनी ज़रूरी है।

जिस दिन मेरठ में ग़दर होना था, कानपुर के समस्त अंगरेज़ अफ़सरों को नाना साहब ने उसी दिन का निमन्त्रण भेजा था। यह सब बात अजीमुल्लाखाँ की कारस्तानी थी। इसी पर अंग-रेज़ क़ैद कर लिये जाते, उधर कानपूर पर क़ब्जा कर लिया जाता, और नाना साहब को मजबूर करके कानपुर का शासक नियत कर दिया जाता।

परन्तु जैसा सोचा था—वैसा न हुआ। तब तक तार-रेल का महकमा आज की तरह उन्नत नहीं था। और जितना था—क्रांति-कारी उसका पूर्ण उपयोग नहीं कर सकते थे। अतः न मालूम किसकी भूल से, अथवा सिपाहियों की उत्तेजना से मेरठ में निश्चित् दिन से एक दिन पूर्व ग़दर की आग भड़क उठी। इतने विशाल गुप्त षड्यन्त्र में ऐसी भूल अथवा ऐसी उत्तेजना असम्भव भी नहीं है। अस्तु--

किस प्रकार नाना साहब का भोज असफल हुआ, और किस प्रकार क्या हुआ, और उसी समय क्या घटना हुई—यह सब कुछ पाठकगण पढ़ ही चुके हैं।

घटना का तारतम्य मिलाने के लिए हमारा इतना वक्तव्य पर्याप्त होगा। हाँ, इतना और कह दें, कि मेरठ के ग़दर का समाचार आने के एक सप्ताह बाद तक जब कानपुर में कोई दुर्घटना नहीं हुई, तो, नाना साहब के बार-बार अनुरोध करने पर अंग्रेज अफ़सरों ने पूर्व निश्चित तिथि के ठीक २० दिन बाद उनके भोज में सहयोग देना स्वीकार किया।

नाना साहब का घर ख़ूब सुरक्षित समझकर भयग्रस्त अंग्रेज़ों ने इतने दिन अपनी मेमों को वहीं छोड़ रक्खा।

—: ३ :—

दिल्ली की खबर

मई का अन्तिम सप्ताह था। दिन-भर तेज़ धूप पड़ी थी। कच्ची सड़कों की सफेद धूल पीली पड़ गई थी। घास की पत्तियों के ऊपरी भाग झुलस गये थे। सूर्य्य की प्रखरता के कारण आकाश मानो धुलकर—नीला-नीला चमक रहा था। दोपहर का क्रोध त्याग कर सूर्य्य मानो खिलखिला कर भागा जा रहा था।

यह पगडण्डी बिठूर को गई है, जिस पर एक आदमी टट्टू पर चढ़ा धीरे-धीरे जा रहा है।

सवार जवान है। चेहरा और हाथ-पैर गठे-भरे हैं, परन्तु धूल-धूसरित होकर कान्ति-हीन हो रहे हैं। गर्मी और धूप के कारण परेशान है। गालों पर मिट्टी और पसीने की गन्दी लकीरें खिंची हुई हैं। शरीर का पतला अँगरखा भी पसीने की अधिकता के कारण गीला, और मैला हो रहा है। बाईं तरफ—कोख के पास अँगरखा काफी उभरा हुआ है। अगर कोई सिपाही दीखे—तो फौरन कहदे—पिस्तौल है।

टट्टू क़द में छोटा-मगर चलने में तेज़ मालूम होता है। दूर की मंजिल मंमारे आता है, मगर चौकड़ी भरने का मौक़ा आवे तो अब भी हिम्मत न हारे। बड़ी भक्ति के साथ—दोनों कान

उठाये हुए, सीधा-सीधा—चला जा रहा है—मानो चलता-चलता किसी दार्शनिक तत्व की गम्भीर विवेचना में लीन है।

टट्टू और सवार चलते-चलते एक जगह जाकर ठहर गये। जहाँ ठहरे—वहाँ एक पक्का कुआ-शिवालय था। कुए पर कठघरा और टूटा डोल पड़ा हुआ था। शिवाले में सिवा चिमगादड़ों कूड़े-कर्कट और सन्नाटे के कुछ न था।

जवान ने टट्टू के मुँह से लगाम निकालकर खुला छोड़ दिया, ताकि स्वच्छन्दता-पूर्वक चर सके, और कपड़ा बिछा कर शिवालय के बाहरी चौतरे पर बैठ गया।

एक बड़ का पेड़ था। उसके पत्तों से लड़ती और शोर मचाती हुई हवा ठण्डी होकर जवान-तक आई, और उसका मूक धन्यवाद ग्रहण कर वापिस चली गई। जवान ने कुछ मिनट सुस्ताकर सामने—दूर तक—नजर फेंकी, और आप-ही-आप कहा—"अभी-तक नहीं?"

दो-चार मिनट और ठहर कर उसने कुँए की तरफ़ मुख किया, और ठण्डे पानी से खूब मल-मल कर नहाया।

कपड़े पहनकर उसने फिर सामने नजर फेंकी। अब की बार उसे कुछ दिखाई दिया। एक सवार घोड़ा दौड़ता हुआ उसी तरफ़ आ रहा था।

मिनट-भर में सवार जवान के सामने आ खड़ा हुआ। एक मुसलमान था। घोड़े से उतर कर उसने जवान को सलाम किया। और एक पुर्जा उसके हाथ में रख दिया।

युवक ने पुर्ज़ा पढ़कर कहा—"तुम्हारा नाम ?"

मुसलमान ने सलाम करके कहा—"ख़ाकसार······हमीद।"

'ठीक!" कहकर जवान ने टट्टू फिर कस लिया और उस पर सवार होकर मुसलमान के साथ बिठूर की तरफ़ चला।

मार्ग में युवक ने कहा—"दीवान साहब सानन्द हैं ?"

हमीद ने कहा—"जी हाँ, मज़े में हैं।"

"आजकल तो बिठूर में-ही हैं न ?"

"जी हाँ; कल नाना साहब कानपूर के फिरङ्गियों की ज्याफ़त करने वाले हैं, उसी की तैयारी में व्यस्त हैं।"

युवक "हूँ!" कहकर चिन्ता में डूब गया, फिर बोला—"तुम तो दीवान साहब के नौकर हो न ?"

हमीद ने बड़े आडम्बर के साथ 'हाँ हाँ' में उत्तर दिया।

युवक ने पूछा—"टीकमसिंह को जानते हो ?"

हमीद सोत्साह बोला—'जी हाँ, क्यों नहीं जानता ? ज़रूर जानता हूँ—टीकमसिंह, ताँतिया साहब, राय साहब, बाबा साहब, बालजी, दामोदर दास—सबको जानता हूँ; (किंचित् हँसकर) और आपको भी कुछ-कुछ जानता हूँ।"

युवक ने ज़रा चमक कर हमीद का मुँह देखा, और आख़िरी वाक्य सुनकर कुछ मुस्करा दिया। धीरे-से कहा—"देखो, ख़ाँ साहब, ज़बान को इतनी आज़ादी न दो।"

हमीद ने जोश से उछलकर तलवार की मूठ छुई, और कहा—"सरकार ज़बान को आज़ादी देने के पहले तलवार को

आज़ादी दे चुका हूँ । यह होगी, और बदमाश फिरङ्गियों का सिर............"

जवान ने कड़े स्वर में कहा—'क्या बकते हो...?...देखते नहीं, कैसा मौका है !!"

हमीद सहमकर चुप हो गया, फिर दोनों में कोई बात न हुई।

बिठूर के बाहर एक कच्चा—परन्तु सुन्दर—घर था। हमीद और जवान यहाँ आकर रुके। घर के बाहर कोई निम्न-श्रेणी का व्यक्ति—शायद भंगी या चमार—खड़ा था। हमीद ने अपना घोड़ा और जवान का टट्टू उसके सिपुर्द किया, और दोनों अन्दर घुसे।

घर भीतर से भी बिल्कुल साफ-सुथरा, लिपा-पुता सुन्दर था। एक खुला सदन था, और सदन में एक निवाड़ का पलंग पड़ा हुआ था। हमीद ने युवक को आदर-सहित पलँग पर बैठाया और थोड़ी देर की छुट्टी माँगकर चला गया।

कोई दस मिनट बाद वह लौटा। एक हिन्दू, एक हाथ में काठ की चौकी, और दूसरे में जल का पात्र लिए उसके साथ था। युवक ने हाथ-मुँह धोया, कुल्ला किया और जूते निकाल कर भोजन के लिए तैयार हो गया।

एक ब्राह्मण भोजन का थाल और जल का लोटा रख गया। हमीद एक कुर्सी मँगाकर पलँग के पास-ही बैठ गया।

भोजन करते-करते युवक ने कहा—"तो ज़्याफ़त कल है?"

"किनको?—नाना साहब की?" हमीद बोला—

"हाँ, कल शाम को चार बजे सब लोग आयेंगे और सात-आठ बजे तक विदा हो जायेंगे !"

"कुछ प्रबन्ध हुआ है ?" धीरे-से युवक के मुँह से निकला।

हमीद उदास हो गया। बोला—"जहाँ-तक मुझे मालूम है, सरकार, नाना साहब राजी नहीं हैं।......पक्का हाल आपको हुजूर से ही मालूम होगा।'

युवक ने चौंककर कहा—"अरे हाँ, कब आयेंगे वे ?—उन्हें खबर तो कर दी गई होगी ?"

हमीद बोला—"जी हाँ, खबर तो उन्हें पहले से-ही थी। सब कुछ—जो होता है—वे जानते हैं। फिर भी मैंने उनके पास खबर भेज दी है।"

इतने में किसी ने हमीद को बाहर से आवाज़ दी। हमीद गया, और फ़ौरन लौटकर बोला—"हुजूर अंधेरा होने पर ख़ुद तशरीफ़ लायेंगे।"

युवक ने कुछ न कहकर चुपचाप भोजन समाप्त किया।

पाठक अगर युवक का परिचय जानने को उत्सुक हों,—तो हम उनसे प्रार्थना करेंगे—वे अधीर न हों;—युवक का परिचय न हम दे सकते हैं, न इसकी आवश्यकता है। हाँ, इतना कहना है, कि युवक पश्चिमोत्तर-प्रदेश की ग़दर पार्टी का एक आसाधारण सदस्य है और किसी कारण वश अजीमुल्लाखाँ से मिलने आया है।

आठ बजे थे। अँधेरा हो गया था। बिठूर में सब जगह

चिराग़ जल गये थे। युवक पलँग पर अध-लेटा, दोनों हाथ सिर पर बाँधे, किसी चिन्ता में डूबा था। हमीद वहाँ नहीं था। सहन के एक कोने में एक धीमी जलती हुई लालटेन रखी थी।

इतने में कुछ आहट हुई। युवक चौंककर सम्हल बैठा। आगे-आगे अजीमुल्लाखाँ—परिवर्तित वेश में—थे, और तेज़ लाल्टेन हाथ में लिए हुए पीछे-पीछे हमीद आता था।

युवक ने एक नजर में अजीमुल्लाखाँ को पहचान लिया। उछलकर पलँग से उठ बैठा, और आगे बढ़कर बे-साख़्ता अजीमुल्लाखाँ से लिपट गया—मानो लड़की है, जो बड़े दिनों बाद सुसराल से लौटकर माँ से मिली हो!

अजीमुल्लाख़ाँ ने प्रेम-पूर्वक कुछ देर युवक को गले से लिपटाये रक्खा, फिर दोनों आकर पलँग पर बैठ गये। हमीद लाल्टेन रखकर बाहर चला गया, और तलवार निकालकर दरवाजे पर घूमने लगा।

इधर युवक ने प्रेमाश्रु पोंछकर और गला साफ़ करके कहा—"भाई साहब, नाव मँझधार में डूबी जा रही है!"

अजीमुल्लाख़ाँ ने कुछ चिन्तित परन्तु शान्त, गम्भीर स्वर में कहा—"घबराओ नहीं बिरादर, हिन्दोस्तान आज़ाद होगा और होगा!"

युवक ने कहा—'भाई साहब, आपके भरोसे-ही सब काम हुआ, और आपकी तरफ़ ऐसी शिथिलता हुई। यह बड़ी निराशा की बात है। सब जगह एक साथ आग लगती तो अब तक

अँग्रेजों के छक्के छूट जाते। मगर सब किया-कराया बेकार-सा हो गया। इधर पञ्जाब में भी समय पर कुछ नहीं हुआ, इधर युक्त-प्रान्त और बङ्गाल में भी आग दबी-की-दबी पड़ी है; और इस तरह फिरंगियों की स्थिति दिन-दिन मजबूत और प्रकृति सतर्क होती जा रही है। बताइये, क्या आशा की जाय?"

अज़ीमुल्लाख़ाँ सिर झुकाकर धीरे-धीरे बोले—"पलीता जल चुका है, आग भड़केगी और......तबाह हो जायेंगे।"

युवक ने अधीर होकर कहा—"मगर यह होगा कब भाई साहब?—किस तरह यह सब हो सकेगा?"

अज़ीमुल्लाख़ाँ ने उसी लहजे में कहा—"अधिक समय नहीं है। जल्द-ही सब कुछ हो जायगा। जल्द-ही भारत-भूमि पर से इन पिशाचों का लोप होगा।"

अज़ीमुल्लाख़ाँ ने यह कहते-कहते दाँत पीसकर मुट्ठियाँ कसीं।

उनकी उत्तेजना देखकर युवक उत्साहित हुआ, और उसने पूछा—"अच्छा, बतलाइये तो सही; आपने तो कहा था—मेरठ के साथ ही यहाँ पर ग़दर मच जायगा, सेनायें बाग़ी हो जायँगी अंग्रेज अफ़सर क़ैद हो जायेंगे!—यह सब क्यों नहीं हुआ? कैसे सारी योजना फ़ेल होगई?"

अज़ीमुल्लाख़ाँ ने कराहकर जोर-से जाँघ पर हाथ मारा—और कहा—"अफ़सोस! सारा कौशल व्यर्थ गया!"

युवक जिज्ञासा-पूर्ण भाव से उन्हें ताकने लगा।

अज़ीमुल्लाख़ाँ ने शान्त होकर कहना शुरू किया - "असल में मेरठ की सेनाओं की जल्दबाज़ी ने सब चौपट कर दिया। अगर एक दिन की देर हो जाती—मेरठ में एक दिन ग़दर और न होता—तो मेरा कौशल सफल होने में सन्देह न था।.........ग़लती मेरी-ही थी—जो मैंने इस विषय में कुछ पहिले-ही न सोचा।"

यह कहकर उन्होंने नाना साहब के भोज का सारा क़िस्सा युवक को सुनाया और पूछा-"मेरठ में यह गड़बड़ क्यों हुई? क्या सेनायें हाथ में न रहीं?"

युवक बोला—"नहीं, बात असल में यह हुई कि—अधिकारियों को सिपाहियों पर सन्देह होगया, और हथियार लेने का परामर्श होने लगा। सिपाही इससे बहुत बिगड़े—और अधीर होकर उन्होंने निश्चित तिथि से एक दिन पहले-ही अफ़सरों को उड़ा दिया, और उसी दिन, नृशंसता के अवतार बनकर उन उत्तेजित मूर्खों ने शहर-भर में प्रलय मचादी। अंग्रेज—मर्दों को गोली से उड़ा दिया, मेमों को तलवारों से चीर दिया, बच्चों को किरचों से छेद दिया, बँगलों को जला दिया, गिर्जों को तोड़ दिया और सारे शहर को तबाह करके उसी दिन दिल्ली को प्रस्थान कर दिया! हम लोगों ने बड़ी कोशिश की—हत्या न हो-खून अधिक न बहाया जाय—बहुत-सों को बचाया भी—मगर कहाँ तक?—व्यवस्था न रही, और जिसके जी में जो आया—किया। अब सब लोग दिल्ली में हैं। दिन-दिन दिल्ली की

सुरक्षित फ़सीलों के बीच सेना बढ़ रही है। वहाँ बूढ़े बहादुरशाह को तख़्त पर बैठा दिया गया है, और उनके नाम पर सिपाही शहर में अशान्ति फैला रहे हैं। आप हत्यारों का सब प्रबन्ध करके अगर समय पर दिल्ली पहुँच जाते, तो यह कुछ भी न होता, और सब काम पूर्व-व्यवस्था के अनुसार ठीक उतर जाता !

अज़ीमुल्लाख़ाँ ने सब सुनकर ठण्डी साँस ली। फिर धीरे-से कहा—"कोई पर्वाह नहीं, 'अब जल्द-ही सब काम होगा। अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। परसों कानपुर पर हमारा क़ब्ज़ा होगा ········।

युवक बोला—"निश्चय ?"

अज़ीमुल्लाख़ाँ—"हाँ, निश्चय-ही ऐसा होने की आशा है। उसी दिन से तैयारी कर रहा हूँ। मेरठ की मूर्खता यहाँ के सिपाहियों में भी न घुस जाय, इसी लिये मेरा यहाँ ठहरना जरूरी था; वर्ना अब तक ज़रूर दिल्ली आजाता। ख़ैर ·····।"

युवक ने पूछा—"किस प्रकार काम होगा ?"

अज़ीमुल्लाख़ाँ ने फुसफुसाकर कहना शुरू किया—"जिस कमरे में मेहमानों के खाने का प्रबन्ध किया गया है, वह ज़रूरत के वक्त एक मजबूत क़ैदख़ाना भी बन सकता है। ऐसा प्रबन्ध किया गया है, कि नाना साहब उनके भारतीय मित्र-मैं, बलराव, बाबा भट्ट, ताँतिया टोपी, सब लोग- बाहर आजायेंगे, और इस प्रकार आसानी से सब अंग्रेज़ अफ़सर क़ैद कर दिये

जायेंगे। उसी वक्त कानपुर जाकर नाना साहब को गद्दी-नशीन कर दिया जायगा।"

"नाना साहब तैयार होगये हैं?"

"नहीं, षड्यन्त्र का उन्हें पता नहीं है। अँग्रेजों को क़ैद करने के बाद उन्हें गद्दी पर बैठने को मजबूर किया जायगा, और इस प्रकार बग़ैर खून खच्चर के हम अपने उद्देश्य में सफल हो जायेंगे।"

"मगर एक बात खटकती है।"

"क्या?"

"यही कि, नाना साहब विवश होकर सब काम करेंगे, यह विवशता मुझे हितकर नहीं मालूम होती।"

"कोई पर्वाह नहीं, नाना साहब मेरे साथ विश्वासघात न करेंगे। आख़िर वे भी भारतीय हैं। पकी-पकाई रोटी मिलती देख, कोई भूखा ऐसा नहीं होता—जो उसे लेने से इनकार करदे।……………और अभी तो एक रात शेष है, अगर उन्हें सीधे रास्ते पर ला सका, तो अब जाकर कोशिश करूँगा।"

"हाँ अगर ऐसा हुआ—तो क्या-ही बात है!"

अजीमुल्लाखाँ चलने को तैयार होकर बोले—"हमीद आपकी खिदमत के लिए तैयार है। जिस चीज की जरूरत हो, अपना नौकर समझकर उससे तलब कीजिये। मैं अब चलता हूँ। सावधान रहियेगा।"

युवक ने कहा—"आप अब कब आयेंगे?"

"मैं ?"—अजीमुल्लाखाँ ने क्षण-भर ठहरकर कहा—"मैं नाना साहब के पास होकर रात को बारह-एक बजे यहाँ आऊँगा। बाबा भट्ट और बालराव भी मेरे साथ रहेंगे।—एक बार सब मिलकर सलाह पक्की करलें।......और आप से उनको मिलाना भी तो है।"

युवक ने पूछा—"और रामचन्द्रराव ?—वे जेल में है ? क्यों ?"

"हाँ, वे जेल में हैं !"

युवक ने पूछा–ऐसे वक्त आप उन्हें छुड़ाते क्यों नहीं ? क्या आप इतनी शक्ति भी नहीं रखते ?"

"यह सब कुछ है। क़ैद होने के दूसरे दिन ही हमने उन्हें छुड़ाने का आयोजन कर लिया था। मगर उन्होंने छूटने से इनकार कर दिया। कहने लगे—"नाना साहब मेरे स्वामी हैं। उन्हीं की आज्ञा पर मैं क़ैद हुआ हूँ, उन्हीं की आज्ञा पर छूटूँगा।" हम लोगों ने उन्हें बहुतेरा समझाया, मगर वे किसी प्रकार राजी न हुए।

युवक के मुँह से "धन्य ! धन्य !!" निकल गया।

—: ४ :—

प्रणय का मूल्य

रात के आठ बजे······

नाना साहब के बाग़ में·· ···

दो चपल युवतियाँ घूम रही हैं।

एक मैना ※ है, दूसरी उसकी सखी मालती। दोनों बाग़ में—न-जाने क्यों—घूम रही हैं।

अचानक एक चिड़िया पेड़ पर चहक उठी। मैना ने ठण्डी साँस लेकर कहा—"हम से ज्यादा तो यह चिड़िया-ही भाग्यवान है!"

मालती ने आश्चर्य पूछा—"सो कैसे?"

मैना बोली—"नहीं समझी?"

"नहीं।"

"देख, यह स्वच्छन्द है, हम परतन्त्र; यह अपनी मालिक खुद है, हमारे मालिक फिरङ्गी हैं; यह जहाँ चाहे जा सकती है, हम अपनी इच्छा से घर से बाहर नहीं निकल सकते, यह चाहे

※ मैना नाना साहब की पुत्री थी, और इसी अपराध में अंग्रेज़ों ने इसे जीता आग में जला दिया था।

जो बोलती, चाहे जो करती है, हमें बोलने—तक की स्वतन्त्रता नहीं है। बता, यह हम से ज्यादा भाग्यवान् है, या नहीं ?"

मालती ने सखी से सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा—"सखी, परिस्थिति सब-कुछ करा लेती है। समय की गति विचित्र है! भाग्य का उल्ट-फेर आश्चर्य-जनक है! एक दिन था—फ़िरङ्गी चूड़ीदार पायजामा और अँगरखा-पगड़ी पहनकर हमारे पैरों में लोटने को भटकते थे, आज हमें उनके सामने झुकना पड़ रहा है, एक दिन था—जब फ़िरङ्गी हमारे क़दम चूम-चूमकर गज-भर जगह की भीख माँगते थे, आज वे हमारी रोटियाँ खाकर, हमारी खूराक छीनकर हम पर शासन करते हैं, हमें नीच समझते हैं, हमें मारते हैं, पीटते हैं, दबाते हैं और कोई उनका बाल बाँका नहीं कर सकता।"

मैना बोली—"ओह ! सौ वर्ष के भीतर-भीतर जहर की तरह देश की नस-नस में फैल गये, देश के कोने-कोने में पञ्जे फैला बैठे, जोंक की तरह देश को चूस लिया, और देशवासियों के हृदय पर गुलामी का काला पर्दा डाल दिया। उफ़ ! उफ़ !!"

मालती ने सखी की बढ़ती हुई गम्भीरता, और वेदना देखकर अधिक कहने का साहस न किया। बोली—"समय की बलिहारी है।"

मैना फिर कहने लगी—"कैसी दुर्दशा है! कैसी विडम्बना है! रियासत छिनी, गद्दी छिनी, पेन्शन छिनी, अब रहे, सहे

को भी ये पापी फिरङ्गी हड़प किये जारहे हैं। रोज सैंकड़ों खाते हैं खेलते हैं, मौज उड़ाते हैं, और तिस पर भी रोब जमाते हैं! अभी देखो, ये बे-हया मेमें महीनों से हमारा ही खारही हैं, और हम पर - ही हुक्म चलाती हैं। एक वह बदकार लिली है—कभी सीधे-मुँह बोलती-तक नहीं। दोनों हाथों इस तरह रुपया लुटाती है—मानों बाप के घर में ख़ज़ाना गड़ा है। रोज नये फैशन, रोज नये उत्पात, रोज नया शौक़!···बेशर्म!·· आधी नंगी, रण्डी-सी बनी सब जगह फिरती है, और सब पर रोब गाँठती है। उस दिन बेचारे रामचन्द्रराव को बिना अपराध कारागार में डलवा दिया।······और पिता जी······उन्हें पता नहीं इन सफ़ेद राक्षसों पर क्या श्रद्धा है—कि बिना भविष्य पर दृष्टि-पात किये।दिन-दिन खोखले होते जा रहे हैं! पेन्शन नहीं मिलेगी—नहीं मिलेगी!—अज़ीमुल्लाख़ाँ ने इन नराधमों की तोते-चश्मी का ख़ूब बखान किया— तो भी वह श्रद्धा कम न हुई। उफ़! ईश्वर भारत की रक्षा कर! हमारी रक्षा कर!!"

मालती कुछ कहना ज़रूरी समझकर बोली—"हाँ, अज़ीमुल्लाख़ाँ तो महाराज को बहुतेरा समझाते हैं, पर······।"

मैंना कहने लगी—"अज़ीमुल्लाख़ाँ नर-रत्न हैं, वीर हैं; दूर-दर्शी हैं, और सच्चे भारतीय की तरह अंग्रेज़ों से घृणा करते हैं······"

मालती बोली—"हाँ, घृणा करते हैं, ख़ूब घृणा करते हैं!"

मैंना कहती रही—"अज़ीमुल्लाख़ाँ कट्टर देश-भक्त हैं। उनकी

नस-नस में देश-भक्ति का उन्माद है, उनके ख़ून में देश को स्व-तन्त्र करने का जोश है। वे देश को स्वतन्त्र करने में भयंकर रूप से व्यस्त हैं। परमात्मा उन्हें चिरायु करें, और उनके सत्संकल्प में सफलता प्रदान करें। देश में आग लग चुकी है। चिनगारियाँ उड़ने लगी हैं, यहाँ भी शीघ्र ही पहुंचेंगी, और सब जगह भी शीघ्र ही पहुँचेंगीं। देश-व्यापी क्रान्ति होगी। अधिक देर नहीं है। मुझे सब मालूम है। अज़ीमुल्ला! वीर अज़ीमुल्ला! प्यारे अज़ीमुल्ला! तुम्हें अवश्य सफलता मिलेगी। भारत के उद्धार का सेहरा निश्चय तुम्हारे मस्तक पर बँधेगा!"

दोनों सखियाँ बहुत देर तक गुम-सुम बैठी रहीं। आखिर मालती ने कहा—"अभी तक नहीं आये!"

मैना चुप रही।

मालती सखी का उद्वेग देखकर बड़ी चिन्तित हुई। तब कुछ देर बाद उसने और बात छेड़ी—"सखी, मैंने आज एक नई कविता बनाई है। सुनोगी?"

इस काम के लिए मैना सदा तैयार रहती थी। सुलभता-से चौंककर—मुस्करा कर बोली—"सुनाओ।"

मालती ने कविता सुनाई—

सखी! तू ऐसी पागल क्यों हो गई है?

तेरे पति बहुत दिनों से परदेस गये हैं, और उनकी चिटठी नहीं आई।

परन्तु चिट्ठी के बिना तेरी छाती में दर्द क्यों होता है—

यह समझ नहीं पड़ता।

तुझे सारी रात नींद नहीं आई है।

और तूने करवट ले-ले कर रात समाप्त की है।

तेरे नेत्र आँसुओं से भरे हैं, और देह मृदुल-लता की तरह मुर्झा गई है।

हे सखी! तू अपने केश न नोंच, और आँखों से पानी न गिरा। बुरा समय गया!

—अरी बावली! पीछे फिरकर देख—पति देवता पास-ही खड़े हैं!!

मालती कविता समाप्त कर एक-दम खिलखिला पड़ी, और आश्चर्य-जनक तेजी-से उठकर कहीं भाग गई!

मैना चकित, स्तम्भित बैठी रह गई। यह क्या?···इतने में पीछे कोई धीरे-से हँसा।······

मैना ने चिहुँक-कर पीछे देखा—अजीमुल्लाखाँ खड़े हैं।

मैना खड़ी होगई, पर अजीमुल्लाखाँ ने 'बैठो, बैठो" कहकर उसे बैठा दिया, खुद भी—जरा परे—बैठते हुए हँसकर कहा—"तुम्हारी सखी तो बड़ी सुन्दर कविता करती है, और बिल्कुल मौजूँ। मुझे तो मालूम होता है, मुझे देख कर-ही इसने इस कविता की रचना की है।"

मैना ने सहास्य पूछा—"आप कब-से यहां खड़े हैं?"

"तभी से जब तुम्हारी सखी ने कहा था—अभी-तक नहीं आये।"

मैना ने इस वार्तालाप में अधिक दिलचस्पी न ली, और रुख़ बदलकर कहा—"कहाँ से आते हो ?"

अज़ीमुल्लाखाँ उदास होकर बोले—"महाराज के पास से।"

"क्या हुआ ?"

"कुछ नहीं हुआ; खूब हिला-डुला कर देखा, परन्तु निराशा ही हाथ लगी। अंग्रेज़ों पर से उनकी श्रद्धा किसी प्रकार कम नहीं होती।"

"फिर क्या उपाय करोगे ?"

"बस वही; महाराज को विवश करना होगा।"

"हूँ।" कहकर मैना थोड़ी देर के लिए सोच में डूब गई।

चन्द्रमा ऊँचा उठ गया था। चाँदनी मैना के चेहरे पर पड़ रही थी। अज़ीमुल्लाखाँ एक टक उसका स-प्रभ मुख निहारते रहे। कैसा रूप ! कैसी कमोलता !! और—कैसी कठोरता ! कैसी लगन !! अज़ीमुल्लाख़ाँ के मुँह से सहसा निकला—"प्यारी मैना !"

मैना ने सुना, और माथे पर बल डालकर अज़ीमुल्लाख़ाँ को देखा। उसकी आँखों में एक अनिर्वचनीय ज्योति थी। अज़ीमुल्लाखाँ ने अ-प्रतिभ होकर—सहमकर—कैफियत दी—"माफ़ करना, मैना तुम्हारे मुँह से अपने लिये यह शब्द सुनकर ही यह बोलने का साहस किया। माफ़ करना, अब ऐसी भूल न होगी; कान पकड़ता हूँ ! माफ़ करना—"

कहते-कहते अज़ीमुल्लखाँ ने सचमुच अपने दोनों कान

पकड़कर जोर-जोर से खींचे।

मैना के मुख पर क्षण-भर को हँसी की लहर दौड़ गई, और तब गम्भीर होकर, गद्‌गद् कण्ठ से उसने कहा—"अज़ीम, मैं तुम्हारी भूल पर इस बार ध्यान नहीं देती। परन्तु स्मरण रखो, भविष्य में यह सम्बोधन तब तक तुम व्यवहार में न लाना, जब तक इसके योग्य न होजाओ।"

अज़ीमुल्लाखाँ ने झुका हुआ सिर ऊपर उठाकर कहा—"मैं खुद भी ऐसी भूल करना नहीं चाहता। परन्तु जिस पुरानी आग ने तुम्हारे मुँह से यह सम्बोधन निकलवा लिया, क्या वही आग मेरे दिल में भी नहीं है। क्या——

गला भर आने के कारण अज़ीम अधिक न बोल सके।

मैना ने अपने उमड़ते हुए आँसू पीने में जैसी दृढ़ता दिखाई —वैसी स्त्रियों में कम देखी जाती है। थूक सटक कर गला तर किया और बोली—"अज़ीम, मैं सब समझती हूँ। मगर तुम पुरुष हो, मैं स्त्री हूँ—मैं तुम्हारे लिए आदर्श नहीं हूँ। दृढ़ता में पुरुष सदा स्त्रियों के लिए अनुकरणीय रहे हैं, तुम्हें भी ऐसा ही बनना चाहिए। अगर मैं एक भूल करती हूँ—तो मैं प्रार्थना करती हूँ—तुम उसे सुधारो।"

अज़ीमुल्ला खाँ कहने लगे—"मैना, बिना किसी तर्क के-ही मैं तुम्हारी बात मानने को तैयार हूँ, मगर इतना कहे देता हूँ—कि तुम्हारे लिये अनुकरणीय न मैं कभी था, न बन सकता हूँ। मेरी माँ और तुम—दोनों—मेरी पथ-प्रदर्शिका हो। मेरे हृदय में

उठी हुई देश-भक्ति और प्रेम की आग तुम्हारी-ही पैदा की हुई है; तुमने मुझे इस मार्ग पर चलाया है, तुम्हीं मेरी भूल सुधारती हो। ·········मैं तुम्हारी भूल कैसे सुधारूँ ?"

प्रेमी—युगल बहुत देर—तक सिर नीचा किये निस्तब्ध बैठे रहे। सहसा अजीमुल्ला खाँ ने चौंक कर कहा—"अच्छा, अब चलता हूं·········।"

मैना ने आँसू—भरे नेत्र उठाकर पूछा—"कहाँ जाओगे ?"

"अब ?" अज़ीमुल्ला खाँ ने कहा—"अब मैं जाऊँगा—हमीद के घर।"

"क्यों ?"

"कल किस तरह काम होगा ? इस विषय में परामर्श करते।"

"कौन-कौन लोग कहाँ रहेंगे ?"

'कहाँ ?"

"तुम्हारी मन्त्रणा में ?"

"मैं, बालराव, बाबा भट्ट, तांतिया—और समिति के पश्चिमोत्तर—विभाग के एक अध्यक्ष भी होंगे।"

"वही ?"

"हाँ वही।"

"वे कब आये ?"

"आज ही सन्ध्या को।"

"कोई नई बात मालूम हुई ?"

"कोई नहीं, मेरठ के ग़दर और दिल्ली की अवस्था का कुछ

विस्तृत-विवरण उन्होंने सुनाया। कहते थे—दिल्ली में मुझे जाना चाहिए। अशान्ति शुरू हो गई है। बहुत-से सिपाही स्वेच्छाचारिता पर उतर आये हैं। बूढ़े बहादुरशाह कुछ कर नहीं सकते।"

"..............................?"

"..............................."

"बहुत बुरा हुआ!"

"हाँ, सचमुच मैं भी बहुत चिन्तित हूँ।"

"तो तुम दिल्ली जाओगे?"

"हाँ, विचार तो कर रहा हूँ।"

"कब?"

"बस, इधर से निबटा, और चला!"

"कितने दिन में.............?"

"बस, अधिक दिन नहीं हैं। कल रात को फिरंगी क़ैद होंगे, परसों सुबह महाराज गद्दी-नशीन होंगे। अधिक-से-अधिक तीन दिन सेना की व्यवस्था में लगेंगे। ...एक हफ़्ते के अन्दर-अन्दर रवाना हो जाऊँगा।"

"अगर पीछे कुछ विपत्ति आई?"

"कैसी विपत्ति?"

"अगर अलाहाबाद की गोरी फ़ौज ने धावा किया।"

"यह सम्भव नहीं है। मेरे दिल्ली आने से पहिले अलाहाबाद बनारस और दानापुर की फ़ौजें बाग़ी हो जायेंगे। इन स्थानों

की गोरी फ़ौजें यहाँ आने का अवकाश न पा सकेंगी ”

“ठीक !······अच्छा, अगर कानपुर के गोरे आत्म-समर्पण न करें ?”

“—तो उनकी सरकोबी के लिये हम काफ़ी मजबूत हैं।”

························

························

“अच्छा एक बात पूछती हूँ।”

“क्या ?”

“अगर महाराज गद्दी पर बैठना स्वीकार न करें ?”

“कैसे नहीं करेंगे ? मैं उन्हें विवश करूँगा।”

“मान लो, वे न मानें तो ? —उन्हें मारोगे ?”

“ऐसा नहीं हो सकता। वे ज़रूर मेरी बात मानेंगे। आख़िर वे भी भारतीय हैं।”

“मैं पूछती हूं—वे तुम्हारी बात अब नहीं मानते—तो इस का क्या प्रमाण—कि तब मानेंगे—? क्या उस समय उनकी भारतीयता में अन्तर आ जायगा ?”

“देखो, बात यह है, कि—मैंने जितनी बातें अब तक की हैं —सब गोल और इशारों में। महाराज इस बात की कल्पना नहीं कर सकते—कि हमारी तैयारी इतनी विराट् है। यहाँ तक कि उन्हें मेरे किसी अंगरेज विरोधी षड्यन्त्र में लिप्त रहने का सन्देह भी नहीं है। ऐसी स्थिति में उनके जो भाव हैं—मैं नहीं समझता—इस प्रकार पासा पलटते देखकर भी वे वैसे-ही

रहेंगे। भूखा आदमी भोजन के अभाव में सन्तोष कर सकता है—परन्तु स्वादिष्ट भोजन और सुलभ हो जाने पर भी उसकी उदासीनता वैसी ही बनी रहेगी—मुझे इसमें पूरा सन्देह है। तुम्हारा क्या विचार है ?"

मैना एक मिनट चुप रह कर बोली—"अच्छा, अगर कोई महाराज को फिरंगियों से विरक्त कर दे—तब तो किसी प्रकार के अनुमान पर निर्भर रहना नहीं पड़ेगा ?"

अजीमुल्ला खाँ ने आशान्वित होकर कहा—"वाह ! तब क्या कहना है, फिर तो सफलता अवश्यम्भावी है। परन्तु मुझे ऐसी आशा नहीं दीखती।"

"अच्छा मान लो, ऐसा हो जाये······?"

"हाँ, तब ठीक है। ······मगर ऐसा करेगा कौन ?"

"यह क्यों पूछते हो ? चाहे कोई करे !"

"तु·····················।"

"यों-ही सही, मान लो, मैं ही······। मेरी शक्ति में तुम्हें विश्वास है ?"

"—संसार में सब से अधिक······! तुम देवी हो, तुम्हारी शक्ति धन्य है।"

"अच्छा, अब जाओ।"

"जाता हूं, परन्तु······।"

"क्या ?"

"एक बार फिर बता दो, कब तुम्हें पाऊँगा ?"

"बार-बार क्यों पूछा करते हो ?"

" देवि, मैं तुम्हारी उस गूँज को सदा स्थायी रखना चाहता हूं। जब गूँज धीमी पड़ने लगती है, तभी पुनः सुनकर उसे तेज़ कर लेता हूं।'

"अच्छा सुनो, जिस दिन तुम भारत-वसुन्धरा को विदेशियों के शासन से मुक्त करोगे, और विजय का सेहरा बाँध कर मेरे पास आओगे, उसी दिन मुझे पाओगे !"

"तथास्तु !"

—: ५ :—

ग़दर-योजना

रात के आठ बजे हमीद के घर पर.........

षड्यन्त्रकारी उपस्थित हैं—केवल अज़ीमुल्लाख़ाँ नहीं हैं।

सबके चेहरे निराशा-से उदास हैं।

यह बैठक वह नहीं है, जिसमें आने के लिये—पिछले वार्तालाप में...अज़ीमुल्लाख़ाँ ने मैना से कहा था, यह उससे अगले दिन की बैठक है......।

......हाँ, चौंकिये नहीं!—आज इस वक्त इन लोगों को अंग्रेज़ अफ़सरों की गिरफ़्तारी की फ़िक्र में, और कानपुर में नाना साहब को गद्दी-नशीन करने की तैयारी में व्यस्त रहना चाहिये था? यह क्या??

ठहरिये, हम संक्षेप में बताये देते हैं—चतुर अंग्रेजों के सामने इन लोगों को मुँहकी खानी पड़ी! कौशल फ़ेल हुआ!! कौड़ी पट गिरी!!!

ताँतिया ने कहा—"अफ़सोस! अफ़सोस!! सब किया-कराया व्यर्थ हुआ!"

बालराव—"इतना परिश्रम बेकार हुआ!"

बाबा भट्ट—"हुआ सो हुआ, मगर आगे क्या होगा !—ज़रा इसकी तो कल्पना करो !"

"दानापुर, इलाहाबाद और बनारस की फौजें कानपुर का इन्तज़ार कर रही होंगी। यहाँ कुछ नहीं हुआ तो—वहाँ भी कुछ न होगा। फिरङ्गियों को मौक़ा मिल जायगा। दिल्ली घिर जायगी। हजारों आदमियों को तोप से उड़ा दिया जायगा। उफ़! क्या सोचा था, क्या हो गया !!"

ताँतिया बोला—"अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है।"

"कैसे ?"

"दस अंग्रेज-अफ़सर इस समय के कमरे में हैं। उन्हें क़ैद कर लिया जाय। टीकमसिंह जायँ, और सेना-सहित फ़िरङ्गियों के हस्पताल* पर धावा बोल दें.........."

टीकमसिंह ने कहा—"मैं इस पर विचार कर चुका हूँ, परन्तु मुझे इसमें सफलता नहीं दिखाई देती।"

"क्यों ?"

"कोई बातें हैं। आज अफ़सर विशेष सतर्क होंगे, और अफ़सरों की उपस्थिति में सारी तो दूर किनार—आधी-चौथाई सेना को बागी करना भी मेरी सामर्थ्य के बाहर है। अफ़सोस, अब कुछ नहीं हो सकता !"

---

* विद्रोह की सम्भावना से डरकर अधिकारियों ने कच्ची मिट्टी का एक बड़ा घर बना लिया था, जिसमें सब अँग्रेज रहते थे। यही हस्पताल था।

थोड़ी देर सब चुप रहे, फिर हमीद ने—जो अब तक चुप था—आप-ही-आप बड़बड़ाना आरम्भ किया—"सालों ने चाल भी क्या चली है। कैसी दूर-अन्देशी की है। ऐन वक्त पर नाना साहब से कहला भेजा—'हम सब लोग एक एक साथ भोज में शामिल नहीं हो सकते; फ़ौज के बाग़ी होने का डर है—दस-दस करके आयेंगे। दस अफ़सर जब भोजन करके वापिस कानपूर आजायेंगे, तब दूसरे दस रवाना होंगे। वाह कैसी हरमज़दगी की है! या ख़ुदा! तेरा क़हर भी इन ज़ालिमों पर नहीं पड़ता !!"

पश्चिमोत्तर-विभाग के युवक-अध्यक्ष अब-तक चुप थे। इस असफलता का सबसे अधिक प्रभाव उन पर पड़ा है—ऐसा उनका चेहरा कहता था। अब उन्होंने ऐसे स्वर में कहना शुरू किया—मानों अभी ख़ूब रोकर चुके हैं—"लाखों आदमी ग़ारत हो गए! सारी योजना उलट-पलट हो गई! जिस बात की कल्पना भी न की वही हो गई! हा भारत माता! तुम्हारे भाग्य में अभी परतन्त्रता की बेड़ी पहनना बदा है! जिस स्थान पर सफलता का पूरा विश्वास था—वहीं सब बात उलट गई! हा भगवन्! माँ छोड़ी, बाप छोड़ा, स्त्री छोड़ी, घर त्यागा, दौलत पर लात मारी—और यह पुरस्कार तुमसे मिला!"

यह कहते-कहते वे अधीर होकर रोने लगे।

और सब तो पत्थर की मूर्ति बने बैठे रहे, परन्तु बाबा भट्ट से न रहा गया। उन्होंने युवक का हाथ पकड़ा, और दृढ़ स्वर में कहा—"क्यों रोते हो? रोना भी कोई वीरता है? आदमी

परिश्रम करता है, सफलता या असफलता, दोनों में से कोई एक मिलती है। अगर सब कामों में सफलता अनिवार्य हो जाय, तो सफलता का मूल्य-ही क्या रह गया ? शान्ति धारण करो, फ़ौलाद की तरह दृढ़ हो जाओ। अज़ीमुल्ला ख़ाँ आते होंगे। उनसे परामर्श करेंगे। मैं नहीं समझता, भारत-माता के हज़ारों वीरों का महान् त्याग व्यर्थ जायगा। अगर एक उपाय व्यर्थ हुआ तो क्या अन्य किसी प्रकार की आशा-ही नहीं रही ?"

किसी ने बाहर से कहा—"अवश्य रही।"

ये अज़ीमुल्ला ख़ाँ थे। उन्होंने कमरे में प्रवेश किया। सब लोगों ने सहर्ष उनकी बात सुनी, और खड़े होकर उनका स्वागत किया।

अज़ीमुल्ला ख़ाँ के साथ-ही-साथ सब बैठे। तांतिया ने बैठते ही पूछा—"क्या हुआ ? फ़िरंगी गये ?"

"हाँ, भोजन समाप्त हो गया, जा रहे हैं।"

बाबा भट्ट ने हाथ मलते हुए कहा—"क्या पिंजड़े में आई चिड़िया को छोड़ना पड़ेगा ?"

अज़ीमुल्ला ख़ाँ ने माथे का पसीना पोंछा, और विषाद-युक्त हँसी हँसते हुए कहा—"हाँ, अब तो छोड़ना-ही पड़ेगा।"

'अब तो' का क्या मतलब ?

"यही कि—फिर ज़ोर लगाया जाय !"

तांतिया बोले—"कुछ आशा दिखाई देती है ?"

"मैं तो घोर आशावादी हूँ। जीवन में मुझे बड़ी-बड़ी

असफलतायें मिलीं, परन्तु सदा अपने काम में जुटा रहा। अब भी ऐसा ही होगा। आख़िरी दम तक मैं अपनी कोशिशों से बाज़ न आऊँगा।"

बालराव कहने लगे—"लेकिन अब हो क्या सकता है? दानापुर, अलाहाबाद, बनारस की सेनाएँ कानपुर के विद्रोह-समाचार की प्रतिक्षा कर रही होंगी। यहाँ कुछ नहीं हुआ, तो वहाँ भी कुछ नहीं होगा। इधर फिरंगी सावधान हो गये हैं।"

हमीद बड़बड़ाने लगा—"ओफ़! बदमाशों ने कैसी चाल चली है? सब एक-साथ नहीं आये, दस-दस करके आये। कैसी चालाकी के साथ मौत के पंजे से निकल भागे। ओफ़! आज मेरी तलवार का करिश्मा······।"

इसकी बड़बड़ाहट पर किसी ने ध्यान न दिया। अजीमुल्ला खाँ—बालराव को लक्ष्य करके कहने लगे—"फिरंगी अभी सावधान नहीं हुए हैं। मैं इन लोगों की प्रकृति जानता हूं। ये लोग भयङ्कर विपत्ति में भी किंकर्तव्य-विमूढ़ नहीं होते, और बड़ी से बड़ी आफत में भी मजाक का सामान पैदा कर लेते हैं, और अपने नैमित्तिक कार्यों में बाधा नहीं पड़ने देते। परन्तु अगर जरा सी भी विपत्ति की सम्भावना होती है, तो सब काम अत्यन्त सतर्कता पूर्वक करते हैं, हमारी आज की असफलता का कारण इनकी वही स्वभाव-सिद्ध सतर्कता है। ······और किसी प्रकार का सन्देह अभी तक उनके मन में पैदा नहीं हुआ है।"

टीकमसिंह ने पूछा—"सेनाओं के हथियार तो न लिये जायेंगे ?"

अज़ीमुल्ला ख़ाँ बोले—"सेनापति ह्वीलर ऐसी बेवकूफ़ी कभी नहीं कर सकता। सिपाहियों को मन-ही-मन चाहे वह अपना दुश्मन समझे, परन्तु ऊपर से उनके ऊपर अविश्वास की जगह विश्वास जताने में ज्यादा फ़ायदा देखेगा। मेरा यह विश्वास कभी ग़लत नहीं हो सकता।"

"क्यों ?"

"क्योंकि मुट्ठी-भर गोरों के बल पर वह कभी कानपुर में ठहरने का दुःसाहस नहीं कर सकता। सिपाहियों में विद्रोह की आग न-मालूम कब फूट पड़े। रानी विक्टोरिया के जन्म-दिन पर बेचारे ने इस डर से तोप तक तो छुड़वाई नहीं—कि कहीं सिपाही चौंक न पड़ें! वह जानता है—हथियार लेने को अगर देसी सेनाएँ परेड के मैदान में भी बुलाई गईं, तो भी ग़दर हो जायगा।"

"तो इसका अर्थ है—कि सिपाहियों को हथियार छिनने का भय न करना चाहिए।"

"हाँ, मेरा ऐसा ही विश्वास है। ·········मगर एक बात सोचता हूँ। सेनापति ह्वीलर बे-वकूफ़ नहीं है। सन्देह-युक्त सेनाओं के हाथ में अधिक समय तक हथियार रहना, उसे अभीष्ट नहीं होगा। अब उसके लिए एक-ही रास्ता रह जाता है।

"क्यों ?"

"…… …'कि कहीं से गोरी फ़ौज उसकी सहायता के लिये मंगाये।"

टीकमसिंह ने चौंक कर कहा—"हाँ, यह ठीक है। …अगर ऐसा हुक्म हुआ तो बड़ा अनर्थ होगा।"

अजीमुल्ला खाँ ने धैर्य्य-पूर्ण स्वर में कहा—"कोई पर्वाह नहीं, अभी कम-से-कम बीस दिन मदद के आने की सम्भावना नहीं है। इतने समय में हमें जो कुछ करना होगा, कर गुज़रेंगे।"

बाबा भट्ट ने पूछा—"लेकिन समझाइये तो सही, काम होगा किस तरह ?"

अजीमुल्लाखाँ ने गरजकर कहा—"अब चुपचाप काम नहीं हो सकेगा। अब खून की नदियाँ बहेंगी।"

सब लोग इस गरज से प्रभावित हुए। बालराव ने पूछा—"लेकिन यह सब होगा कब ?"

अजीमुल्लाखाँ ने कहा—"बहुत जल्द;—ज्यादा-से-ज्यादा एक हफ़्ते में।"

तांतिया बोले—"सच बात जरा साफ़-साफ़ कहें तो……"

अजीमुल्लखाँ ने कहना शुरू किया—"अभी-अभी—कोई एक घण्टा पहले—मैं नाना साहब के पास बैठा था। फिरङ्गियों का अन्तिम जत्था नाना साहब के बाग़ का निरीक्षण कर रहा था। नाना साहब दिन-भर की दौड़-धूप से थककर आराम गाह

में आ बैठे थे। इतने में मैना दौड़ती हुई आई......।"

'मैना' का नाम सुनकर सब चौंक पड़े, और अधिक ध्यान-पूर्वक अज़ीमुल्लाख़ाँ की बात सुनने लगे।

"......मैना क्रुद्ध और बदहवास आराम-गाह में घुस आई, और नाना साहब से लिपटकर रोने लगी। नाना साहब ने आश्वासन देकर पूछा तो रोते-रोते बताया—किसी बदमाश गोरे ने उससे अभद्रता का व्यवहार किया। नाना साहब सुनकर एक बार क्रोध-से काँप गये। मुझे बड़ा भारी क्रोध हुआ। मैंने नाना साहब को वह दिन याद दिलाया, जब उन्होंने मिस टामसन की शिकायत पर बेक़सूर रामचन्द्रराव को जेल में ठूंस दिया था। मेरी बात सुनकर और भी उत्तेजित हुए, और बोले—'बता बेटी, किस पापी ने तेरा अपमान किया है! इस शरीर में अभी शिवाजी का खून है। चल इसी वक्त उस पापी का सिर उतार लूँ।' परन्तु मैंने यह उचित न समझा। मैंने कहा—"महाराज, इस शख्स को फिरंगियों के सिपुर्द कर दीजिये। उसे दण्ड देने का आपको अधिकार नहीं है"! महाराज ने मेरी बात मानी, और गोरे को पकड़कर सेनापति ह्वीलर के सिपुर्द कर दिया। बूढ़े ह्वीलर ने वचन दिया, कि वे उसे उचित दण्ड देंगे।"

बालराव ने पूछा—"आपने ऐसा क्यों किया? नाना साहब को उत्तेजित क्यों न होने दिया, और फिरंगियों के प्रति उनके मन में—अगर वे गोरे को मार देते, तो—द्वेष-भाव और वैमनस्य पैदा क्यों न होने दिया?"

अज़ीमुल्लाख़ाँ बोले"—अगर नाना साहब गोरे को मार डालते तो, निश्चय गिरफ़्तार हो जाते। फ़ौजें तैयार न हो पातीं, फिरंगी सावधान हो जाते, और सिवा हानि के कुछ लाभ न होता।"

"आपने गोरे को ह्वीलर को सौंप देने में क्या लाभ सोचा?"

"मैं जानता हूँ—ह्वीलर उस गोरे को कुछ सज़ा नहीं देंगे······।"

"क्यों?"

"क्योंकि कानपुर में गोरे बहुत-कम तादाद में हैं। ऐसे समय में एक गोरे का दण्डित करके वे बहुत से गोरों के अश्रद्धा भाजन बन जायेंगे। ऐसे मौके पर ह्वीलर कभी पारस्परिक फूट का बीज न डालेंगे। समझे?"

"ठीक···!"

"हाँ; इधर मैं नाना साहब को अधिक भड़का सकूंगा। फिरङ्गियों के इस पक्षपात के मुक़ाबले में उनका न्याय रक्खूंगा। मैं समझताहूँ, इस प्रकार नाना साहब अवश्य फिरंगियों के खून के प्यासे होजायंगे, और खुल्लमखुल्ला विद्रोह में हमारी सहायता करेंगे।······इसीलिये पाँच-सात रोज ठहरना पड़ेगा।"

"लेकिन इसके लिये एक सप्ताह की देर क्यों की जाय? क्यों न कल-ही ग़दर मचा दिया जाय?"

"अगर नाना साहब हमारी मदद को तैयार न हुए?"

"जैसे उन्हें पहले मजबूर किया जा सकता था, वैसे-ही अब भी······।"

"नहीं, अब की बार वैसा नहीं हो सकेगा ?"

"क्यों ?"

"देखो—अगर हम अपने आज के मैदान में सफल होते, और सब अंग्रेज-अफ़सरों को कैद कर लेते, तो नाना साहब को बिना विघ्न-बाधा के गद्दी मिलती दिखाई देती। अब इतनी विघ्न-बाधाएं हैं, चिर-परिचित अंग्रेज-मित्र स्वतन्त्र हैं ऐसे समय में नाना साहब को मजबूर करना असम्भव है। बल्कि शायद वे हमारे काम में बाधक बनें।"

"अगर उन्हें सफलता मिलने-तक अपने रास्ते से हटा दिया जाय······?"

"यानी क़ैद कर दिया जाय ?"

"हाँ।"

"यह सबसे ज्यादा अनुचित और हानिकारक तरीक़ा होगा। सबसे पहले तो—नाना साहब के आठ हज़ार नौकर हमारे विरोधी बन जावेंगे; दूसरे, नाना साहब से हम जिस बड़ी आर्थिक सहायता की आशा करते हैं, वह नहीं मिलेगी; तीसरे शहर की जनता की सहानुभूति हमारे साथ नहीं रहेगी; चौथे मैना को······नाना साहब के कुटुम्बियों को इससे बड़ा दुःख होगा—अपने स्वामी को क़ैद में डालने को मेरा दिल भी तैयार नहीं होता। नाना साहब को किसी प्रकार का कष्ट पहुँचाने

की कल्पना मैं नहीं कर सकता। क्यों, आप लोगों का क्या खयाल है ?"

सब लोग बोले—"ठीक है !!"

केवल हमीद आप-ही-आप बड़बड़ाया—"ज़ालिमों ने सब किया-कराया चौपट कर दिया ! हाय ! आज-ही सुबह तलवार पर धार रखवाई थी। छिः ! सब-कुछ बेकार हुआ !!"

थोड़ी देर सब चुप रहे ! तब बाबा भट्ट बोले—"तो अब किस प्रकार काम शुरू हो ? सबको काम सौंप दीजिये।"

अजीमुल्लाखाँ बोले—"टीकमसिंह फ़ौज में तेजी-से आग भड़कायें. तीन या चार जून तक कम-से-कम दो सेनायें उन्हें इतनी तैयार कर लेनी होंगी—कि इशारा होते-ही किसी समय भी वे फिरंगियों के अस्पताल पर धावा बोलने को तैयार हो जायें……।'

टीकमसिंह ने सिर झुकाकर कहा—"बहुत अच्छा !"

"……बाबा भट्ट भेष बदल कर साहब लोगों के बावर्चियों में घुस जायँ, और फिरंगियों को प्रत्येक गति—विधि पर नज़र रक्खें……"

बाबा भट्ट बोले—"जैसी आज्ञा।"

"……ताँतिया के जिम्मे अस्त्र-संग्रह का काम है। नाना साहब के अधिकांश नौकर निशस्त्र हैं, उनके लिये अस्त्र-संग्रह करना बहुत आवश्यक है।"

ताँतिया ने भी स्वीकृति-सूचक गर्दन हिलाई।

तब अज़ीमुल्लाख़ाँ ने पश्चिमोत्तर-विभाग के सञ्चालक-महोदय से कहा—"आप चुपचाप यहीं रहकर तमाशा देखिये। इधर से निबटकर आपके साथ दिल्ली चलूंगा। ....'हमीद' तुम चौबीस घन्टे इस घर में रहो। इनकी रक्षा का भार तुम पर है। हर समय तुम्हें नंगी तलवार हाथ में लिए पहरे पर रहना होगा।"

हमीद ने स्वीकार किया, और पहली उदासी भरे स्वर में कहा—"अफ़सोस ! आज यह तलवार बदमाश फिरंगियों का ख़ून चाटती होती ! ......अब इसे फ़िजूल मेरे हाथ में रहना होगा। (दाँत पीसकर) ... बदमाशों ने कैसी चाल चली ! ... दस-दस आये ...... ।"

हमीद की इस हास्यास्पद बड़-बड़ाहट पर मुस्कुराते हुए सब लोग खड़े हो गये।

—: ६ :—

मराठे का प्रण

चार जून की सन्ध्या थी। नाना साहब और मैना बैठे थे। यह वही कमरा था—जिसमें रामचन्द्र राव को दण्ड दिया गया था। अजीमुल्ला खाँ की कुर्सी पर मैना बैठी थी, नाना साहब अपनी जगह पर थे।

मैना ने कहा—"बाबा, दीवान साहब अभी लौटे नहीं ?"

नाना साहब बोले—"आते ही होंगे।"

नाना साहब किसी गहन चिन्ता में निमग्न हैं। "बाबा, क्या इस पापी फ़िरंगी को कुछ दण्ड न मिलेगा ?"

"अवश्य।"

"क्या अवश्य — दण्ड मिलेगा ?"

"अवश्य मिलेगा बेटी, घबरा मत।"

कुछ देर दोनों चुप रहे। फिर मैना बोली—"बाबा, मुझे तो आशा नहीं होती।"

"कैसी ?" नाना साहब ने मानो नींद से चौंक कर कहा।

"गोरे को दण्ड नहीं मिलेगा।"

"नहीं, जरूर मिलेगा, अङ्गरेज लोग अपने प्रिय का अपराध भी क्षमा करना नहीं जानते।"

"बाबा, एक हफ्ता होने आया, अभी तक कुछ नहीं हुआ।"

"अज़ीमुल्ला रोज़ जाते हैं। सेनापति ने शीघ्र ही दण्ड देने का वादा किया है।"

"बाबा, अब तक सेनापति ने कुछ क्यों नहीं किया?"

"बेटी, आजकल सिपाही उत्तेजित हो रहे हैं; सेनापति अपनी और अन्य अँगरेज़ों की रक्षा करने का प्रबन्ध करने में व्यस्त हैं।"

मैना ने कुछ ठहर कर कहा—"बाबा, यह कुछ नहीं, सब बहाने-बाज़ी है। सेनापति तुम्हें धोखा देता है।"

नाना साहब ने चमक कर पूछा—"क्या कहा बेटा? यह भ्रम तुम्हें कैसे हुआ?"

मैना उत्तेजित होकर बोली—"बाबा, तुमने इन अंग्रेज़ों की हद्-से-ज्यादा ख़ातिर करके अपना मान खो दिया। तुम उन्हें अपना मित्र समझते हो, वे तुम्हें, अपना ग़ुलाम—अपना आश्रित, अपना कुत्ता समझते हैं! बाबा, तुम बड़े अँधेरे में हो।"

कई दिन से नाना साहब के मन में ठीक यही बात उठ रही है। अङ्गरेज़ों की न्याय-प्रियता का महत्व धीरे-धीरे घटता जा रहा है। एक साधारण अंग्रेज-लड़की से ज़रा-सी बात कह देने पर मैंने अपने आदरणीय मित्र को कठोर दण्ड दिया। एक क्षण की देर न की!! और मेरी बेटी—प्यारी बेटी, का अपमान करने वाले एक मामूली गोरे को दण्ड देने में सेनापति ऐसी अनिच्छा और अन्य-मनस्कता प्रकट कर रहे हैं। क्या मैं उस

नीच गोरे से भी गया-बीता हूँ ? क्या सेनापति मेरा इतना भी आदर नहीं करते ? क्या · · ?

मैना ने पिता को चुप देखकर कहा—"बाबा, तुम हिन्दुस्तानी हो। अँगरेज़ हिन्दुस्तानियों को कभी मित्र नहीं समझ सकते यह सब समय का प्रभाव है। एक समय था, जब अंग्रेज़ भारत - वासियों के पैरों की ख़ाक चाटते थे, आज हमारी रोटी छीनकर हमें - दुरदुराते हैं। बाबा, इन पापियों ने तुम्हारी रियासत छीनी, गति छीनी, पेन्शन छीनी तुम इनकी तोते-चश्मी का हाल अज़ीमुल्लाखाँ से सुन-ही चुके हो—और तब भी तुम इन्हें मित्र बनाने को उत्सुक होते हो? तुम्हारा माल खाने के लिये ये लोग चाहे मित्र बनें, परन्तु याद रक्खो; अपने कुत्ते से भी कम ये लोग तुम्हारा आदर करते हैं, और हाथ पर चलती हुई चींटी से भी कम तुम्हारी पर्वाह करते हैं!"

नाना साहब अस्फुट स्वर में बोले—"अज़ीमुल्लाख़ाँ आवें तब पता लगे। अभी कुछ नहीं कहा जा सकता।"

मैना ने दाँत पीसकर कहा—"बाबा तुम मेरे पिता क्यों हुए? तुम मेरा अनादर करने वाले को दण्ड देने की शक्ति नहीं रखते—तो लो मेरा गला घोंट दो। मैं अपने जीते-जी अपना यह अपमान नहीं सह सकती। बाबा, तुम्हें शिवबा बाबा की याद······"

नाना साहब घबराकर उठ खड़े हुए, और परेशान होकर कमरे में इधर-उधर घूमने लगे।

मैना ने देखा—जहर पैदा हो रहा है। कुर्सी पर बैठी हुई थोड़ी देर उनके बदलते हुए भाव देखती रही, फिर धीरे-धीरे बोली—

"बाबा !"

"बाबा !"

"बाबा !"

नाना साहब ने झुका हुआ सिर उठाकर मैना की तरफ़ देखा! चेहरा सुर्ख़ हो रहा था। आँखों से आग निकल रही थी, और नीचे की पलकों पर क्रोध का पानी इकट्ठा हो रहा था। उन्होंने क्षण-भर बेटी का मुँह ताककर कहा—"मैना, तू जा······!"

इससे अधिक कुछ न कह सके। मैना उसी-दम उठकर बाहर चली गई।

नाना साहब टहलते-टहलते बड़बड़ाने लगे—"मेरी बेटी का अपमान करने वाले एक साधारण सैनिक को दण्ड देने में ऐसी शिथिलता! मेरे साथ ऐसा कुव्यवहार!······तो क्या सब धोखे की टट्टी है?······क्या यह मेल, मुलाक़ात, आदर, अभ्यर्थना सब कृत्रिम है?······क्या सचमुच मुझे ये लोग कुत्ता समझते हैं?······अच्छा, अज़ीमुल्लाखाँ आयें, तब······"

इतने में अज़ीमुल्लाखाँ कमरे में घुस आये।

नाना साहब ने उनकी तरफ़ देखा, और छूटते-ही पूछा—"कहो, क्या खबर है?"

अज़ीमुल्लखाँ ने उन्हें सलाम किया, और सिर झुकाकर खड़े होगये।

नाना साहब ने अधीरता-से पूछा—"अजीम, सेना-पति ने क्या कहा ?"

अजीमुल्लाखाँ सिर झुकाये हुए-ही बोले—"हुजूर, आखिर वही हुआ, जो मैं कहता था।"

"क्या ? ?" नाना साहब ने कुर्सी पर बैठते हुए पूछा—"क्या हुआ ?"

"सेनापति ने गोरे को क्षमा कर दिया !"

"क्षमा कर दिया ?"

"जी हाँ, और आज सुबह अलाहाबाद भेज दिया।"

"अलाहाबाद भेज दिया।"

"जी हाँ, और मैंने उनके कार्य का विरोध किया तो आपकी और आपकी पुत्री की शान में बड़े घृणापूर्वक शब्दों का प्रयोग किया !!...क्या कहूँ महाराज...!"

"नाना साहब ने दोनों कुहनियाँ जाँघों पर रखीं, और दोनों हथेलियों पर सिर का बोझ देकर बहुत आहिस्ते से पूछा बोले—"क्या कहा ?"

अजीमुल्लाखाँ समझ गये—यह क्रोध का तीव्र-तम अवस्था है। बोले—"महाराज, कहने लगा—'चार्ल्स (वह गोरा) निरपराध है।' मैंने कहा—'निरपराध कैसे है ? आपके सामने ही तो उसने अपना अपराध स्वीकार किया था ?' सेनापति ने कहा—'जो-कुछ उसने वहाँ स्वीकार किया था, वही उसने यहाँ भी स्वीकार किया, परन्तु नाना साहब की लड़की से उसने जो-कुछ

कहा—उसकी इच्छा और उसका रुख देखकर। प्रेमी-प्रेमिकाओं के लिये यह बातें क्षन्तव्य हैं। नाना साहब पहले अपनी लड़की का चरित्र सुधारें, तब किसी को दण्ड दिलवाने की सिफ़ारिश करें।' मैं तो महाराज, न अधिक सुन सका न कह सका। एक बार जी में आया पिस्तौल निकाल कर एक-ही फ़ायर में इस बूढ़े को खत्म कर दूँ—लेकिन फिर कुछ सोचकर रह गया! ओफ़! इन लोगों का ऐसा साहस! इन बदमाशों की ऐसी नीचता!! याद है महाराज, इसी कमरे की घटना है, ज़रा-सी बात पर रामचन्द्रराव कारागार-दण्ड भोग रहा है! फिरङ्गियों के न्याय की क़लई आप पर खुल गई न? ओफ़!"

नाना साहब ने क्रोध-से बिलबिलाकर कहा—"अज़ीम बस करो। मैं ज़्यादा नहीं सुन सकता………।"

नाना साहब यह कहते-कहते कुर्सी छोड़ कर खड़े हो गये, और उछल कर खूंटी पर लटकती हुई तलवार उतार ली, और शेर की तरह गरजते हुए बोले—"अगर यह तलवार सेनापति का सिर न काटे, और मैं पापी चार्ल्स के कलेजे का खून न पियूँ, तो शिवाजी की सन्तान नहीं। चलो अज़ीम, पहले ह्वीलर का सिर काटूँगा।"

अज़ीमुल्ला ख़ाँ ने मन-ही-मन हर्षित होकर कहा—"महाराज, आपकी प्रतिज्ञा पूर्ण होगी। सब तैयारी हो चुकी है। इन अन्याइयों का नाश होगा। भारत-भूमि को इन राक्षसों के हाथ से स्वतन्त्र करना होगा। आपकी आज्ञा की देर थी, चौबीस

घन्टे में कानपुर से अंगरेजों का नाम-निशान मिट जायगा। दो मिनट ठहरिये, हम सब लोग आपके साथ चलते हैं। आप की प्रतिज्ञा पूर्ण होगी।"

नाना साहब ने पागलों की तरह तलवार घुमाते हुए कहा—"मुझे किसी की मदद की जरूरत नहीं है। मैं अकेला ही फिरंगियों का नाश करूँगा। अगर तुम्हें मेरे साथ चलना है तो चलो, वर्ना सामने से हट जाओ।"

नाना साहब यह कहते-कहते उसी प्रकार तलवार घुमाते हुए आगे बढ़े।

नाना साहब की उत्तेजना देखकर अजीमुल्ला खाँ पहले प्रसन्न हुए, फिर उतने ही स-शङ्क भी। क्षण-भर कुछ सोचा, फिर एक तरफ हटकर क्रोधोन्मत्त स्वामी को जाने का रास्ता दे दिया।

नाना साहब तलवार घुमाते और यह कहते कमरे से बाहर निकल गये—"फिरंगियों का नाश होगा, सेनापति का गला काटूंगा, चार्ल्स का कलेजा फाड़ूंगा।

बाग में मैना खड़ी थी। पिता को यह विकृत चेष्टा देख, वह दौड़कर उनके पास आई, और पुकार कर बोली—"बाबा, कहाँ जाते हो?"

नाना साहब ने बिना उसकी तरफ देखे तलवार घुमाते हुए कहा—"सेनापति का गला काटने! चार्ल्स की छाती फाड़ने!!" कहते-कहते नाना साहब बाग का फाटक पार कर गये।

मैना चकित, स्तम्भित पाँच मिनट तक वहाँ खड़ी रही। एक-दम ऐसी उत्तेजना ! अकेले कहाँ जा रहे हैं ? अजीमुल्लाखाँ कहाँ हैं ?"

इतने में अजीमुल्ला खाँ भी दौड़कर आते दिखाई दिये। वे भी उधर ही जा रहे थे, जिधर नाना साहब गये थे।

मैना ने चिल्लाकर पूछा "अज़ीम, कहाँ जाते हो ?"

अजीमुल्लाखाँ ने उसकी तरफ़ देखा और चाल में अन्तर डाले बिना कहा—"नाना साहब की रक्षा करने !"—कहते-कहते वे भी बाग़ का फाटक पार कर गये।

मैना ने ख़ूब जोर-से चिल्लाकर कहा—"प्यारे अज़ीम मुझे भूल न जाना।"

अज़ीमुल्लाखाँ ने फाटक के बाहर से कहा-"प्यारी मैना, ऐसा कभी नहीं हो सकता।"

मैना पत्थर की मूर्ति की तरह वहीं खड़ी रही। पाँच-सात मिनट बाद-ही उसे महल की तरफ बड़ा कोलाहल सुनाई दिया। चकित होकर वह उस तरफ़ देखने लगी। पाँच-सात आदमी दौड़ते हुए आये। मैना ने बालराव बाबा भट्ट, ताँतिया, और हमीद को पहचाना। बालराव को लक्ष्य कर उसने चिल्लाकर पूछा—"काका, कहाँ जाते हो ?"

बालराव बोले—"आग लगाने; जान लेने—या देने !! वे सब भी दर्वाजा पार कर गये।

महल की तरफ़ कोलाहल बढ़ता-ही जा रहा था।—मानो

हजारों आदमी मिलकर चिल्ला रहे हों। मैना कुछ क्षण-तक आश्चर्य चकित खड़ी रही। इतने में देखा बहुत से आदमी आ रहे हैं। मैना ने पहचाना—सब उसके नौकर हैं, सबके हाथ में तलवार, बन्दूक, कटार, बर्छा आदि हथियार हैं, सब बाग़ के बाहर की ओर भागे जा रहे हैं।

मैना ने चौथी बार चिल्ला कर पूछा—कहाँ जा रहे हो ?"

हज़ारों आवाजें एक-एक साथ निकलीं—"फिरंगियों का नाश करने ! महाराज की रक्षा करने !! तुम्हारे अपमान का बदला लेने !!!"

जब-तक इन लोगों का उत्तेजित जलूस सामने से गुजरता रहा-मैना एक अलौकिक आत्मिक आनंद अनुभव करती रही !

× × ×

नाना साहब लपके जा रहे थे। अजीमुल्लाख़ाँ ने कानपूर पहुँचते-पहुँचते उन्हें पा लिया। फ़ौजें तैयार थीं। बिगुल की आवाज़ पर ग़दर हो जाता। उधर अंग्रेजों ने अस्पताल में मोर्चे-बन्दी कर रक्खी थी, और ख़ूब चौकन्ने थे। ऐसे समय में उन्मत्त नाना साहब का उनके समीप जाना बड़ा खतरनाक था। अज़ी-मुल्लाख़ाँ ने समझा-बुझा कर उन्हें वहाँ जाने से रोका, सब बातें सुझाईं, और बताया—कि अंग्रेजों का नाश दूसरी तरह से भी किया जा सकता है।

नाना साहब ठहर गये, और क्रुद्ध उन्मत्त नेत्र खोलकर अजीमुल्लाख़ाँ को घूरा और नथुने फुलाकर जोर-से कहा—"मैं

रुक नहीं सकता।'

अजीमुल्लाखाँ हाथ बाँधकर बोले—"हुज़ूर, शान्त होइये, अंग्रेज़ फौरन आपकी हत्या कर डालेंगे। अपका जीवन बड़ा मूल्यवान है; उसे यों न खोइये। हज़ारों सिपाही आपके संकेत पर कट मरने को तैयार हैं...।"

नाना साहब गर्ज कर बोले—"मैं बदला लूँगा।"

अजीमुल्ला खाँ बोले—"जरूर बदला लीजिये, परन्तु मेरी बात न मानकर आप आवेश में, जान से हाथ धो बैठेंगे। कान-पुर की सारी देशी सेना आपके साथ है। दर्जनों तोपें, हज़ारों बन्दूकें, असंख्य अन्य अस्त्र-शस्त्र हमारे कब्जे में हैं। उनका सदुपयोग कीजिये, और इन राक्षस फिरंगियों से भयकर बदला लीजिये।"

नाना साहब एक-टक अजीमुल्लाखाँ का मुँह ताकते रहे, फिर सहसा बोले—"मैं विश्वासघाती ह्वीलर का खून करूँगा।"

अजीमुल्ला खाँ बोले—"यह सब हो जायगा महाराज, जैसे मैं कहूं वैसे करें।"

नाना साहब उसी तान में बोले—"मैं चार्ल्स की छाती का खून पीऊँगा।"

अजीमुल्ला खाँ ने कहा—"यह भी होगा।"

नाना साहब फिर बोले—"मैं अङ्गरेजों का नाश करूँगा।"

अजीमुल्ला खाँ ने कहा—"यह भी होगा।"

नाना साहब ने पूछा—"इसका प्रमाण?"

अजीमुल्ला ख़ाँ ने उत्तर दिया—"कानपुर चलिये; वहीं मिलेगा !"

इसी समय दूर से भयङ्कर कोलाहल सुन पड़ा। स्वामी-सेवक उधर आकृष्ट हुए। अजीमुल्ला खाँ ने बढ़-बढ़ा कर कहा—"मालूम होता है, अभी प्रमाण मिलेगा।"

कोलाहल क्षण-क्षण में बढ़ता जाता था। दोनों आदमी चुप चाप खड़े थे।

हज़ारों आदमी—भाँति-भाँति के शस्त्र हाथों में लिए, कोलाहल मचाते-दौड़ते चले आते थे। नाना साहब ने पहचाना—वे सब उनके नौकर थे। आगे-आगे तांतिया, बालराव, बाबा भट्ट और हमीद थे, और उनके पीछे नाना साहब के उत्तेजित नौकरों की लम्बी कतार! सब लोग चिल्ला रहे थे—"अङ्गरेजों का नाश हो! अंग्रेजों का नाश हो!!"

बात-की-बात में हजारों आदमी नाना साहब और अजी-मुल्ला खाँ के चारों तरफ जमा हुए। अजीमुल्ला खाँ ने मुस्करा कर नाना साहब से कहा—"इसी प्रकार कानपुर की सेनायें महाराज के अपमान का बदला लेने को तैयार हैं!"

नाना साहब का हृदय उत्साह से भर गया, मुँह से बात न निकली। उन्होंने केवल हाथ की लम्बी तलवार उठाकर हवा में हिलाई।

अजीमुल्लाखाँ ने चिल्ला कर कहा—"सब लोग कानपुर चलो। सेना तैयार है। फिरंगियों ने अन्याय किया है। महाराज

का अपमान किया है। ऐसे अन्याइयों का नाश हो जाना चाहिए। सब लोग मरने को तैयार हो जाओ।·········बोलो नाना साहब की जय!"

सबने भक्ति-भाव से कहा—"नाना साहब की जय!"
"···बोलो फिरंगियों का नाश!"

उत्तेजित भीड़ ने भीषण प्रतिहिंसा से पागल बनकर कहा—"फिरंगियों का नाश············!"

कुछ देर बाद समस्त कानपुर कान के पर्दे फाड़ने-वाले गोलों के भयंकर निनाद से गूँज उठा।

—: ७ :—

नाना साहब का विवेक

कानपुर में ५ जून सन् १८५७ का दृश्य जिसने देखा हो—उसके लिये प्रलय और नर्क की कल्पना ज़रा-भी भयप्रद, उद्वेग-जनक, अथवा आश्चर्य्य-कर नहीं होगी। उस दिन कानपुर में हज़ारों मन रक्त बहा, और हवा में उड़कर फ़ुर्र होगया। उस दिन देशी सेनाओं ने भीषण प्रतिहिंसा से उन्मत्त हो-होकर खून की होली खेली, और गोरों का सिर काट-काटकर उनके खून से अपना कलेजा और शरीर तर किया। उस दिन सिपाही अपने बीबी-बच्चों और अपने प्राणों को भूल, स्वतन्त्रता की वेदी पर कट मरने को जूझ पड़े। उस दिन सिपाही फ़िरंगियों का, उनके मकानों का, उनके गिर्जों का और उनके प्रत्येक चिन्ह का नाम-निशान मिटाने को भयङ्कर रूप से बौखला उठे। चारों तरफ़ भीषण मार-काट, चीख-चिल्लाहट और तोप-बन्दूकों की गड़गड़ाहट के सिवा कुछ नहीं था। मिनट मिनट पर आदमी मरते थे, क्षण-क्षण पर घायल धराशायी होते थे, सेकण्ड-सेकण्ड पर बन्दूकों की बाढ़ें छुटती थीं। उस दिन मनुष्य के अनिवर्चनीय मूल्यवान् जीवन का मूल्य मुफ़्त से भी सस्ता था! सर्वत्र भयङ्कर कोलाहल-मय अशान्ति का साम्राज्य था!!

उत्तेजित सिपाहियों ने खज़ाना लूट लिया, क़ैदियों को मुक्त कर दिया, फ़िरङ्गियों को जहाँ पाया मारा—और तब तोपखाने पर अधिकार जमाया।

सारी रात लड़ते, मारते, काटते, और आग में उछलते बीती सेनापति ह्वीलर और अन्य सब अंग्रेज अस्पताल की चहार-दीवारी में चले गये थे। चौड़ी, कच्ची दीवारों पर रक्खी हुई अंग्रेजों की तोपों ने गोले उगल-उगलकर भयङ्कर रूप से अव्य-वस्थित सिपाहियों का संहार आरम्भ कर दिया था!

सिपाही एक बार इस मार से घबरा गये, और खज़ाना गाड़ियों पर लाद, दिल्ली चलने को तैयार हुए। परन्तु इसी समय अज़ीमुल्लाखाँ एक सूखे पेड़ पर चढ़ गये और भयङ्कर रूप से गर्जकर बार-बार कहने लगे—"दिल्ली जाने से सब लोग मारे जाओगे। इधर कानपुर भी हाथ से निकल जायेगा। पहले कानपुर पर क़ब्ज़ा करो फिर पूरी ताक़त के साथ दिल्ली की तरफ़ कूच करेंगे। इसके बिना सब लोग बीच-ही में पिल जायेंगे।"

अज़ीमुल्लाखाँ की वाणी ने बिजली का असर किया। सब जहाँ-के-तहाँ रुक गये—मानो किसी ने मन्त्र पढ़ दिया हो! सब तरफ़ निस्तब्धता छा गई।

अज़ीमुल्लाखाँ चिल्लाकर बोले—"तोपखाने की सब तोपें ले जाकर अस्पताल के सामने मोर्चा-बन्दी करो, और हिम्मत के साथ इन कच्ची दीवारों को तोड़कर फ़िरंगियों को क़ैद करलो!"

इसी समय अंग्रेजों की तोप का एक गोला उस सूखे पेड़ पर आकर गिरा। अजीमुल्लाखाँ बिजली की तेजी-से उछलकर पृथ्वी पर आरहे। लोगों के मुँह से भय की एक चीख निकल गई! अजीमुल्लाखाँ बाल-बाल बच गये।

इस समय नाना साहब कहाँ हैं?

नाना साहब एक सुरक्षित स्थान पर बैठे हुए सिपाहियों की गति-विधि देख रहे थे। नसों का खून उबला पड़ता था। शरीर जोश-से उछला पड़ता था। अंग्रेजों को इस प्रकार सुरक्षित देखकर बार-बार दाँत पीसते थे। जिस अंग्रेज-जाति का उन्होंने सदा इतना सम्मान किया, जिस अंग्रेज-जाति के लिये उन्होंने अपना धन पानी की तरह बहाया, जिस अंग्रेज-जाति की एक साधारण स्त्री की झूठी बात पर उन्होंने अपने वर्षों के स्नेही रामचन्द्रराव को कठिन दण्ड दिया,—उसी अंग्रेज-जाति का एक उच्च-पदस्थ कर्मचारी—जिसने वर्षों उनकी रोटियों पर गुजर की, और जिसको लाखों रुपये का माल वे केवल भेंट-स्वरूप दे चुके थे—उनकी बेटी का अपमान करने वाले को इस प्रकार बे-दाग छोड़ दे, और यही नहीं—सब के सामने अपराध स्वीकार कर लेने पर भी उसे निरपराध बतावे और खुद भी उनकी पुत्री को बद-चलन बताने का साहस करे! नाना साहब इस समय इस कृतघ्न अंगरेज जाति के खून के प्यासे हो उठे थे, और सेनापति ह्वीलर का सिर काटने को उत्तरोत्तर व्यग्र होते जा रहे थे।

नाना साहब उस घर में अकेले थे। पास में कोई मनोरञ्जन की सामग्री भी न थी। इस क़ैद-सी में पड़े-पड़े उनका जी ऊबने लगा। सिपाहियों की फुर्ती और मार-माट देखकर बार-बार उनकी इच्छा होती थी, कि स्वयं भी तलवार हाथ में लेकर रण-क्षेत्र में कूद पड़े, और सिपाहियों के साथ मिलकर विश्वास-घाती और नीच अँगरेजों से बदला लें। परन्तु लाचार थे, घर का दरवाजा मजबूती के साथ बाहर से बन्द था। एक बार उन्होंने खिड़की से कूदने का विचार किया, परन्तु ऊँचाई देखी तो सहम कर रह गये।

किसी ने कमरे में प्रवेश किया। यह अजीमुल्लाख़ाँ थे—खून से तर, भयङ्कर सूरत, आँखों से प्रतिहिंसा की लपटें निकलती हुई, सिर पर खून सवार—जल्दी-जल्दी कमरे में घुस आये, और आकर नाना साहब को सलाम किया।

नाना साहब ने कुर्सी से खड़े होते हुए उद्विग्न स्वर में पूछा, "क्या हाल है? फिरंगी क़ैद नहीं हुए?"

अजीमुल्ला ख़ाँ बोले—"अभी तक क़ैद एक भी नहीं हो सका। कुछ मारे गये, बाकी सब अस्पताल में चले गये हैं, और कच्ची चहार-दीवारी पर मोर्चा-बन्दी कर के दृढ़ता-पूर्वक मुकाबला कर रहे हैं।"

नाना साहब ने कहा—"हमारी तरफ क्या हाल है?"

अजीमुल्ला ख़ाँ ने उत्तर दिया—"हमारी ताक़त काफ़ी से ज़्यादा है। आखिर जीतेंगे हमीं। अगर हम गोला-बारी बन्द कर दें, और सिर्फ अस्पताल को घेर कर पड़ जायँ—तो भी

आखिरकार इन लोगों को आत्म-समर्पण करना ही होगा।"

नाना साहब विचार में पड़कर बोले—"...बड़े जोर की गोला-बारी हो रही है !......"

"जी हाँ," अजीमुल्ला खाँ ने कहा—"हम उनका गोला-बारूद ख़त्म करना चाहते हैं।"

नाना साहब बोले—'कब तक विजय प्राप्त होने की आशा है।

अजीमुल्ला खाँ ने व्यस्तता से कहा—"हम लोग बहुत शीघ्र जीतेंगे। ...मैं आपकी खबर लेने आया था। शाम को फिर आऊँगा।"

—कहकर वे बिना उत्तर की बाट देखे, नाना साहब को सलाम कर, चले गये।

शाम तक नाना साहब के मन में एक नये विचार ने हल-चल मचा रक्खी। अजीमुल्ला खाँ आये—तो उन्होंने सब से पहले कहा—"अजीम, मेरी एक बात सुनो।"

"हुक्म ?" अजीम ने सादर पूछा।

"सेनापति ह्वीलर और गोरे चार्ल्स ने दण्डीय काम किया है, उनके अपराध पर हजारों अंगरेजों का खून बहाना अन्याय है। तुम यह गोला-बारी बन्द करा दो, और फिरंगियों से कहो—"वे सेनापति ह्वीलर को हमारे सिपुर्द करदें।"

नाना साहब की बात सुनकर अजीमुल्ला खाँ एक बार चौंके फिर हँस कर बोले—हुजूर, यह असम्भव है।"

"क्यों ?"

"अगर मैं फिरंगियों से यह कहूँ कि एक तरफ़ तुम सब लोगों की जान, माल और आज़ादी है; और दूसरी तरफ़ तुम्हारे सेनापति का अकेला शरीर–बोलो दोनों में से किसे चाहते हो? —तो निश्चय-पूर्वक वे दूसरी को पसन्द करेंगे! आप उनसे यह आशा करते हैं, कि वे लोग अपनी जान बचाने के लिये, अपने बूढ़े नायक की गर्दन गटवा देंगे?"

नाना साहब ने व्यथित होकर सिर झुका लिया, और बोले, —"अज़ीम, बे-कसूरों का यह ख़ून मेरी गर्दन पर होगा।"

अज़ीमुल्ला खाँ ने अब की बार क्रोध से गरज कर कहा— "महाराज, जिन लोगों का आपने इतना आदर किया–वे आपका अपमान करके भी दया के पात्र हैं। जिन्होंने आपका नमक खा कर भी आपकी इज्ज़त पर हमला किया—वे क्या तलवार के घाट उतार देने के क़ाबिल नहीं हैं? ......और अन्याय? ... आप अन्याय की बात कहते हैं। जिन्होंने अन्याय और अत्याचार के बल पर ही सौ वर्ष से इस देश पर राज्य किया है, जिन्होंने अन्याय और अत्याचार और धोखेबाजी से ही मीर जाफ़र, टीपू सुल्तान और सिराजुद्दौला की दुर्दशा की, उन अन्यायी पापात्माओं के साथ क्या हमारा यह तुच्छ अन्याय क्षन्तव्य नहीं है? जो धूर्त्त जोंकों की तरह लिपट कर हमारा सारा रक्त चूसे जा रहे हैं—वे अगर सीधे से छुड़ाने से न छूटें तो उन्हें भी काट डालना क्या हमारा धर्म नहीं है? महाराज, भारत-भूमि को इन पापियों के पंजे से मुक्त करना होगा। बिना

इनका और अपना रक्त बहाये देश को मुक्ति नहीं मिल सकती, और न-ही देश सम्पन्न और खुशहाल रह सकता है……!

अधिक जोश के कारण अजीमुल्ला खाँ की आवाज़ गले में अटक गई।

नाना साहब ने अज़ीम का वक्तव्य सुना—और दो-तीन मिनट तक निस्तब्ध खड़े रहे। तब सिर झुका कर भीगे और गम्भीर स्वर में कहा—"अजीम, इस समय यहाँ से चले जाओ।"

अज़ीमुल्ला खाँ बोले—"महाराज, मेरी बातें आपके लिये बड़ी उद्वेगजनक होंगी। परन्तु आप इन पर दस बार, बीस बार हजार बार, विचार करें, और मेरे वक्तव्य के हर-एक पहलू पर गौर करें। मुझे यक़ीन है, आप मेरे हम-खयाल बन जायेंगे।

नाना साहब ने उसी तरह सिर झुकाये, कातर होकर कहा—"अज़ीम, जाओ, बे-गुनाहों का खून मुझे डुबा देगा। मुझे शान्त बैठकर इस भयङ्कर पाप से छूटने का उपाय सोचने दो।"

"जाता हूँ महाराज," अजीमुल्ला खाँ ने कमरे के दरवाजे पर पहुंचकर कहा—"आप सोचें, खूब सोचें; मगर इस रक्त-पात की बात सोचते हुए पेशवाओं के अतीत गौरव और वैभव को न भूलें—कि इस सारे गौरव और वैभव को अन्याय-पूर्वक छीन लेने वाले यही फ़िरंगी लोग हैं, जिन पर आप दया करने की आज्ञा दे रहे हैं!"

नाना साहब ने कहा—"अज़ीम, ठहरो!"

अज़ीम ने पूछा—"क्या?"

"सुनो," नाना साहब कुछ गम्भीर होकर बोले—"मैं यह सब समझता हूँ, पर सुनो……अभी समय नहीं है।"

"क्या ? ?"

अज़ीम ने ठहर कर कहा—"महाराज, इन पापियों के अत्याचार से हम लोग अकुला उठे हैं। देश हमारा है, उसमें हम रहेंगे, इन बदमाश फ़िरंगियों को हम अपना देश, अपनी लक्ष्मी और अपना मनुष्यत्व न सौंपेंगे। सारा देश ग़दर के लिये तैयार है। सारी फ़ौजें बग़ावत पर उतारू हैं। अब इन राक्षस फ़िरंगियों के पाँव इस देश में जमे रहने असम्भव हैं। आप चिन्ता को त्याग दीजिये।"

अज़ीमुल्ला ख़ाँ यह कहकर चले गये।

—: ८ :—

अंग्रेज़ का हृदय

इसके बाद जो हुआ—इतिहास के पाठकों से छुपा नहीं है। नाना साहब के बार-बार अनुरोध पर सिपाहियों की तरफ से गोला-बारी बन्द कर दी गई। उनकी दया-शीलता का प्रभाव अज़ीमुल्लाखाँ पर भी पड़े-बिना न रह सका। उन्होंने तीन हफ्ते के मुहासिरे के बाद दुर्दशाग्रस्त अंग्रेजों के पास सम्वाद भेजा—यदि वे बिना किसी शर्त के आत्म-समर्पण करदें तो उनकी जाँ—बख़्शी की जा सकती है और उन्हें अलाहाबाद भेजा जा सकता है।

अंग्रेज-क़ौम बड़ी जिद्दी और अहम्मन्य होती हैं। गर्मी से तपते हुए कानपूर के अंग्रेजों ने अब तक किसी प्रकार सामना किया था—और सुबह से शाम तक वे लोग अपनी जान की ख़ैर मनाया करते थे, परन्तु अब विपक्षियों की ओर से जाँ-बख़्शी का वादा पाने पर उन्होंने आत्म-समर्पण करने में अपना अपमान समझा, और तिरस्कार पूर्वक अजीमुल्लाख़ाँ का दया-दान अस्वीकार कर दिया।

परन्तु हुआ क्या?

सिपाहियों के तीन गोलों ने इन लोगों का दिमाग़ ठण्डा कर

दिया—और स्वयं सम्वाद भेजकर, इन्होंने आत्म-समर्पण करना स्वीकार किया !

उस दिन सत्ताईस जून थी। बाईस दिन की क़ैद, तकलीफ़ दुर्दशा को भूलकर अस्पताल के अंग्रेज़ अलाहाबाद जाने को हुए। सब लोग अपनी आवश्यक वस्तुएँ साथ लिए मिट्टी की उस चाहर-दीवारी से बाहर हुए। सब .खुश थे—परन्तु विश्वासघात की आशंका और आत्म-समर्पण की मलिनता सबके चेहरों पर अपनी काली छाया डाल रही थी।

थोड़ी देर बाद विश्वासघात की आशंका निर्मूल दिखाई दी। बाहर निकलते-ही पालकियाँ और हाथी तैयार मिले। कुछ अंग्रेज स्त्री-पुरुष पालकियों में बैठे, कुछ हाथियों पर, कुछ पैदल रवाना हुए। खास नाना साहब के नौकरों का एक विश्वस्त और सशस्त्र जत्था उत्तेजित और रक्त पिपासु सिपाहियों से इनकी रक्षा के हेतु इनके साथ-साथ चला।

उत्तेजित सिपाहियों और नगर-निवासियों का झुण्ड भी साथ था। वे लोग इन फिरंगियों को इस प्रकार बचकर निकल जाते देख, दाँत पीस रहे थे। इन सिपाहियों के अध्यक्ष टीकम-सिंह, दामोदरदास, बालराव और ताँतिया टोपी—इत्यादि भी इन लोगों को जीता नहीं छोड़ना चाहते थे। परन्तु करते क्या ?—अजीमुल्लाखाँ की आज्ञा का उल्लङ्घन करने का साहस किसी में न था।

एक-एक क़दम रखते—राम-राम करते, आखिर सब लोग

सतीचौर घाट पर पहुँच गये। नावें तैयार थीं । अँग्रेज अपना छुटकारा निकट देख, परमात्मा को धन्यवाद देने लगे, और उनके खून के प्यासे सिपाही हाथ मलने लगे।

आखिर अँग्रेज नावों में भी बैठ गये। सेनापति ह्वीलर की आज्ञा से पहले स्त्रियाँ अपने बच्चों को लेकर बैठीं, फिर सिविलियन अंग्रेज, और सबके बाद फौजी गोरे नावों में जा पहुँचे। केवल सेनापति किनारे पर रह गये, और धन्यवाद देने के लिये इधर-उधर अज़ीमुल्लाखाँ को खोजने लगे!

उन्होंने शायद दो-तीन बार सिर इधर-उधर घुमाया था, कि अज़ीमुल्लाखाँ एक तरफ से तेज़ चलते हुए वहाँ आ पहुँचे, और सेनापति को धन्यवाद देने के पूर्व ही बोले—"मिस्टर ह्वीलर....!"

अज़ीमुल्लाखाँ के मुख पर आन्तरिक उद्वेग-जनित गाम्भीर्य्य और आँखों में विजय-गर्व की चमक थी!

"सेनापति कुछ सशंक होकर बोले—"कहिये...।"

"मिस्टर ह्वीलर, तुम्हें महाराजाधिराज नाना साहब याद फ़र्माते !हैं"

"महाराजाधिराज नाना साहब!" सेनापति ने अज़ीमुल्लाखाँ की बात को भिन्न प्रकार से दोहराकर उत्तर सोचा, और कहा—क्यों बुलाया है?"

"इसका मुझे इल्म नहीं," अज़ीमुल्लाखाँ ने रुखाई से मुँह फेरकर कहा—"अपने साथियों की नावें चलने दीजिये। आपको बाद में एक तेज नाव में भेज दिया जायेगा।"

सेनापति ने एक बार भरी हुई नावों को देखा, और दूसरी बार अज़ीमुल्लाखाँ के स्वर और भाव पर लक्ष्य दिया, और तीसरी बार सारी परिस्थिति पर एक नज़र डालकर वे कुछ विचलित दिखाई दिये !

अज़ीमुल्लाखाँ फिर बोले—"चलिए।"

सेनापति बुत की तरह चुप !

अज़ीमुल्लाखाँ ने दोहराया—"चलिये।"

अब की बार सेनापति ने हिम्मत करके कहा—"अगर मैं न चलूँ—तो ?"

"तो—?"—कहकर अज़ीमुल्लखाँ एक बार चक्कर में पड़ गये, फिर क्षण-भर बाद बोले—"आप ख़ुद समझ लीजिये;—आप हमारे कब्ज़े में हैं !"

सेनापति का चेहरा सफ़ेद पड़ गया। बोले—"आपने वादा किया था ?"

"हम अपने वादे पर अब भी क़ायम हैं। इस बात का वादा नहीं किया था—कि आपको दस मिनट के लिये कहीं ले भी नहीं चल सकते हैं !"

सेनापति सिर नीचा करके किं-कर्त्तव्य-विमूढ़ खड़े रह गये। और पाँच मिनट-बाद सिर उठाकर उन्होंने देखा—बहुत से फ़ौजी गोरे नावों में से उतर-उतर कर उनके गिर्द आ जमा हुए हैं।

अज़ीमुल्लाखाँ ने कहा—"चलिये।"

सेनापति दृढ़ता—पूर्वक बोले—"मुझे क्यों बुलाया जाता

है ?—बिना यह मालूम किये न जा सकूंगा।"

अजीमुल्लाखाँ ने एक तरफ उँगली से इशारा किया, और कहा—"वह देखते हैं; क्या है ?"

सेनापति ने देखा—तो थर्रा गये !—तोपों की लम्बी कतार ! —नावों के सामने !—एक बाढ़ में नाव और नावों के आदमी भस्म हो सकते हैं ! !

सेनापति ने गम्भीरता—से कन्धा हिलाया, और छाती निकालकर कहा — "मेरे चलने से नावों में बैठे सब लोग सुरक्षित रहेंगे ?"

अजीमुल्लाखाँ बोले —"अगर आप इसी वक्त नावों को रवाना कर दें—तो मैं इस बात का जिम्मा ले सकता हूँ।"

"यह क्यों" ?"

"देखिये !"—कहकर अजीमुल्लाखाँ ने उँगली उठाकर साहब को दूसरी तरफ़ दिखायी।

उधर हजारों देशी सिपाहियों का समूह था।

अजीमुल्लाखाँ बोले —"ये सब आप लोगों के खून के प्यासे हैं। मेरे सामने ये लोग लाचार हैं, मेरी ग़ैरहाजिरी में भी शान्त रह सकेंगे—मैं इसकी जिम्मेवरी नहीं ले सकता।"

सेनापति ने क्षण-भर सोचने के बाद चारों तरफ इकट्ठे गोरों से कहा - "सब लोग जाकर नावों में बैठो, और चलो; मैं पीछे आऊँगा।"

गोरों में एक बार सन्नाटा छागया—फिर बहुत-सों ने एक स्वर

में कहा—"ऐसा नहीं हो सकता। हम सेनापति को अकेला न छोड़ेंगे!"

सेनापति की आँखें भर आईं। गद्गद् कण्ठ से बोले—"मेरी चिन्ता न करो। मैं आज्ञा देता हूँ—सब लोग नावों में बैठकर चले जायें।"

परन्तु नायक-भक्त गोरे सेनापति की इस आज्ञा का पालन न कर सके। कोई टस-से-मस न हुआ।

सेनापति गौरवोन्मत्त होकर बारी-बारी से प्रत्येक गोरे चेहरा को स्नेह पूर्ण-दृष्टि-से ताकने लगे, और उनकी स्वामि-भक्ति का पूरा सुख लूटकर किसी विचार में पड़ गये।

एक तरफ उनकी अकेली जान थी—दूसरी तरफ सैकड़ों आदमियों की; एक तरफ स्वार्थ था, दूसरी तरफ परमार्थ; एक तरफ अन्याय था; दूसरी तरफ न्याय; एक तरफ भय-पूर्ण कायरता थी, दूसरी तरफ़ निर्भीक वीरता!

सेनापति ने माथे का पसीना पोंछा और बड़बड़ाकर—जिसे और कोई न सुन सका—कहा—

"कायरता न करूंगा!"

"अपनी जान की परवाह न करूँगा!"

"सब लोगों को बचाऊँगा!"

तब उन्होंने धीर, गम्भीर स्वर में गोरों को लक्ष्यकर कहा—"मैं तुम्हारी सेनापति की हैसियत से तुम्हें आज्ञा देता हूँ, कि तुम सब लोग इसी समय नावों में चले जाओ!"

गोरों ने दहलाकर सेनापति की इस वज्र-गम्भीर आज्ञा को सुना। और कोई समय होता तो ऐसी आज्ञा पाने पर वे आग में कूद पड़ते। परन्तु अब?—अब क्या करें?—सेनापति को दुश्मन के हाथ में अरक्षित छोड़कर कैसे जायें? गोरे-लोग साँप-छछूँदर-अवस्था में, निस्तब्ध, जहां-के-तहाँ खड़े रह गये! आखिर करें क्या?—स्वामी को विपति के मुँह में छोड़कर जायें?

सेनापति ने अब की बार अपने स्वर को अधिक प्रचण्ड बनाकर कहा—"तुम लोग अपने नायक की आज्ञा का पालन न कर, अपने कर्तव्य और नियम से च्युत हो रहे हो।"

अब की बार एक लम्बे गोरे ने गर्जकर कहा—"श्रीमन्! हमारे तुच्छ जीवन के लिये आप अपनी जान खतरे में डाल रहे हैं। हम मुद्दत-तक आपके आधीन रहे हैं, और आपके साथ रहे हैं। आपकी दी हुई रोटी से हमारा पेट पला है। हम इतने कृतघ्न नहीं हैं कि अन्त समय में अपनी जान के डर से आपको छोड़कर चले जायँ!"

सेनापति ने अपनी हर्ष-जनित उत्फुल्लता को जबर्दस्ती छिपाया और गम्भीर होकर बोले—"मैं तुम्हारी स्वामि भक्ति की सराहना करता हूँ। बस, तुम्हारा कर्त्तव्य पूरा हो चुका। मेरे विषय में चिन्ता न करो। मेरा अनुरोध और आदेश मानकर इसी समय नावों में चले जाओ। मैं शीघ्र-ही आकर आप लोगों से मिलूँगा!"

दृढ़ गोरे सिपाही सेनापति को छोड़कर जाने को तब भी तैयार न हुए। आखिर हारकर, सेनापति ने उनको इस बात पर राजी किया, कि वे उनके लौटने—तक उनकी प्रतीक्षा करें।

तब सेनापति ने चलते-चलते कहा—"बच्चों, ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे!" और अज़ीमुल्लाखाँ से बोले—"चलिये!"

इतनी देर में अज़ीमुल्लाखाँ ने नाना साहब के नौकरों—अंग्रेज़ों के रक्षकों—के अफ़सर को बुलाकर कुछ बातें समझाईं, और अन्त में ज़रा ज़ोर-से बोले—"याद रखना, इन लोगों की रक्षा—नाना साहब के मान और वचन की रक्षा होगी।"

अफ़सर 'जो हुक्म' कहकर सिर झुकाता हुआ पीछे हट गया।

तब अज़ीमुल्लाखाँ सेनापति के साथ लम्बे-लम्बे डग धरते, एक तरफ़ चल दिये।

गोरे और देशी सिपाही और नाना साहब के नौकर—सब अज़ीमुल्लाखाँ और सेनापति की दूर-दूर-दूर होती हुई पीठ पर नजर जमाकर निस्तब्ध खड़े रह गये!

× × ×

नाना साहब ने तेज होकर पूछा—"ह्वीलर! उत्तर दो!!"

बूढ़े ह्वीलर ने सिर के बाल, फिर माथा, फिर भौंहें, फिर आँखें नाना साहब की आँखों के सामने लाकर कहा—"मिस्टर धूंधूपन्त, प्राण-भय से झूठ न बोलूँगा। अज़ीमुल्लाखाँ ने मेरे विषय में जो कहा—उसमें से जानबूझ कर अपमान करने और

पक्षपात से काम लेने की बातें निकाल दी जायँ—तो उनका कथन सत्य है। मैंने इस मामले को दबाने, और तुम्हें अपमान से बचाने के उद्देश्य से-ही चार्ल्स को अलाहाबाद भेज दिया था। विश्वास करो, मैंने जो कुछ किया—अपने आपको तुम्हारा एक दोस्त और हिताकांक्षी समझकर किया।"

नाना साहब ने क्षुब्ध, क्रुद्ध, अवाक् होकर कहा—"यानी-?"

"यानी—" बूढ़े सेनापति ने कुछ तेजी-से कहा—"क़सूर तुम्हारी लड़की का है। उसने चार्ल्स को आकृष्ट किया। उस स्थिति में उस नौजवान ने तुम्हारी लड़की के साथ जो व्यवहार किया—उसे मैंने एक हद-तक क्षन्तव्य समझा, और जब मुझे मालूम हुआ—बुद्धिमान् चार्ल्स ने बिठूर में तुम्हें अपमान से बचाने के लिए अपना अपराध बिना कैफ़ियत के स्वीकार कर लिया—तो मैंने उसे क्षमा करने में तुम्हारी राय लेनी भी मुनासिब नहीं समझी।"

नाना साहब क्रोध-से कांप उठे। ऐसी फूल-सी, प्यारी, भोली और नादान बालिका...मेरी बेटी...बदचलन......!

इससे आगे नाना साहब कुछ भी न सोच सके। आप-ही-आप उनका हाथ तलवार की मूठ पर चला गया। और आँखें सेनापति की तरफ उठ गईं।

सेनापति! ह्वीलर!!—जिससे प्रेम और मित्रता की बातें होती थीं, अनेकों बार जिसके साथ एक टेबिल पर भोजन किया हजारों बार जिसके लिए 'मित्र'-शब्द का व्यवहार उन्होंने किया, उसी

का वध⋯⋯⋯!

परन्तु पुत्री का अपमान ?⋯ कठिन प्रतिज्ञा ? ?

नाना साहब ने तलवार म्यान से बाहर निकाली और, उसे पास खड़े हुए अजीमुल्लाखाँ के पैरों के पास फेंककर कहा—"⋯इस विश्वासघाती फिरङ्गी का सिर बाहर जाकर इस तलवार से काट दो !"

अजीमुल्लाखाँ ने चुपचाप आगे बढ़कर तलवार उठाली। सेनापति ह्वीलर बहादुरों की तरह तनकर खड़े हो गये, और बोले—"धन्यवाद।"

नाना साहब रोते-रोते बोले—"पुत्री का अपमान !⋯कठिन प्रतिज्ञा !!⋯⋯प्यारे मित्र, क्षमा⋯⋯!"

ह्वीलर ने नाना साहब को कुर्सी पर बैठा दिया, और कहा—"दोस्त, कोई पर्वाह नहीं, इस मौत में जिन्दगी से ज्यादा मजा मिलेगा !"—तब अजीमुल्लाखाँ की तरफ फिरकर उन्होंने कहा—"चलो, बाहर चलकर अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करो।"

अजीमुल्लाखाँ का चेहरा फीका-सा हो गया। यह एक अभूतपूर्व घटना थी !

तब दोनों आदमी चुपचाप बाहर आये। सेनापति किसी आत्मिक उल्लास का मजा लूट रहे थे, अजीमुल्लाखाँ मन-ही-मन यह सोचकर चकित हो रहे थे—ओफ़ ! कोई अंग्रेज ऐसा हृदय भी रखता है !!!

सहसा नदी की तरफ़ से तोपों की भयंकर गड़गड़ाहट सुनाई दी। दोनों-ही चौंक पड़े। अज़ीमुल्लाखाँ ने कहा—"अरे—!" सेनापति ने कहा—"हाय !"—और वे बे-तहाशा नदी की तरफ़ दौड़े।

अज़ीमुल्लाखाँ क्षण-भर उसी जगह खड़े रहे, तब वे भी सेना के पीछे दौड़ पड़े।

नदी-तट पर भयंकर दृश्य था। सेनापति के आने में देर होती देख, गोरे उस तरफ़ चलने को प्रस्तुत हुए!

नाना साहब के नौकरों ने रोका, मगर गोरे न रुके, और जबर्दस्ती आगे बढ़े।

उत्तेजित देसी सिपाही तब तक वहीं थे। उन्होंने समझा—लड़ाई शुरू हो गई। सब बन्दूकें भर कर उधर दौड़े, और जाते ही गोरों पर हमला कर दिया। तोपचियों ने चट तोपों पर बत्ती रख दी।

हा-हा कार मच गया। नावें उलट गईं। स्त्री, बच्चों, वृद्धों और रोगियों की दुर्दशा का ठिकाना न रहा। इधर बहुत-से नदी में डूब गये, उधर किनारे के अधिकांश गोरे सिपाहियों की बन्दूकों और किरचों के शिकार बने।

सेनापति वहाँ पहुंचे—तो यह हाल देख कर एक-बारगी रो पड़े, और पास खड़े हुए अज़ीमुल्ला खाँ के हाथ से नाना साहब की दी हुई तलवार छीन कर अपने गले पर फेर ली।

सेनापति गिरे! गिरते-गिरते एक सिपाही की गोली उनके

शरीर में घुस गई।

अज़ीमुल्ला खाँ क्षण-भर खड़े वृद्ध सेनापति के मृत शरीर को श्रद्धा-पूर्वक तकते रहे, फिर आकाश की ओर ताक कर आप ही आप बोले—"या खुदा! मुझे क्षमा कर! परोक्ष-रूप से मेरे द्वारा जो पाप हुआ है, मैं उसका प्रायश्चित करूंगा। परन्तु सब के हृदय का ज्ञान रखने वाले अल्लाह् ताला! तू जानता है, मैं यह सब काम मातृ-भूमि के लिए कर रहा हूं। मेरा कोई व्यक्ति-गत स्वार्थ इस रक्त-पात में नहीं है।" कहकर उन्होंने बग़ल में लटकता हुआ बिगुल जोर से बजाया।

लड़ाई उसी दम ठहर गई।

—: ६ :—

रंग में भंग

उस दिन १५ जुलाई थी। दोपहर का वक्त था। बिठूर में मैना और मालती बाग़ में बैठी थीं। मैना चिन्ताग्रस्त थी, और मुर्झा गई थी। मालती उसका जी बहलाने की चेष्टा करती थी, परन्तु आज मैना की चिन्ता दूर न होती थी।

अन्त में मालती ने कहा—"मैना, आज चिन्तित क्यों हो ?"

मैना बोली—"हूँ।"

"हूँ क्या ?"

मैना ने चौंक कर कहा—"हाँ, क्या कहा ?"

"पूछती हूँ, आज चिन्तित क्यों हो ?"

मैना ने कुछ उत्तर न दिया, और सिर नीचा कर लिया।

मालती बोली—"मैना !"

"हाँ।"

"बोलती क्यों नहीं ?" कहते-कहते मालती ने देखा—मैना की आँखों से आँसू बहने लगे। उसने आगे बढ़कर सखी की आँखें पोंछीं, और आश्वासन देते हुए पूछा—"मेरी प्यारी ! तुम्हें क्या कष्ट है ?"

अब मैना ने सुबकी ले-लेकर कहा—"सखी, कुछ कहा नहीं जाता !"

"कुछ तो !"

मैना बोली—"एक तरफ कर्त्तव्य है–दूसरी तरफ प्रेम; एक तरफ देश की भलाई है—दूसरी तरफ अपनी; एक तरफ वीरता-पूर्ण मृत्यु है, दूसरी तरफ कायरता-पूर्ण जीवन; समझ में नहीं आता-किस रास्ते को पकड़ूँ, और मोह के फन्दे से किस प्रकार निकलूँ ?"

मालती ने कुछ चकित होकर पूछा—"सखी, तुम्हारी बात समझ में नहीं आई। अगर कुछ और स्पष्ट करके कहो, तो शायद मैं······"

मैना ने कहा—"तुम्हें मालूम है, इस समय कैसी संकटापन्न अवस्था है ? यहाँ हम स्त्रियाँ अकेली—अरक्षित पड़ी हैं, वहाँ कानपुर में सब लोग विपत्ति के मुँह में जाने को तैयार हैं······।"

"हाँ, ······कैसे ?"

फ़िरंगियों का भाग्य उनकी मदद कर रहा है। उनका इक़बाल ज़बर्दस्त है। मुझे रात को स्वप्न दिखाई दिया—मानो कानपुर पर उन लोगों का पुनः राज्य हो गया है, और बाबा के साथ सब लोग भाग रहे हैं, और एक अंग्रेज की गोली खाकर अज़ीम·········"

कहते-कहते मैना पुनः रो पड़ी।

मालती ने तसल्ली देते हुए कहा—"बहन, रो मत, स्वप्न की

बात कभी सच्ची नहीं होती। यह सब दिन के विचारों का परिणाम है।"

मैना ने रोते-रोते कहा—"सखी, मेरा मन कह रहा है, हमारी पराजय होगी। विजय की आशा नहीं है।"

मैना के दुःख से मालती बड़ी व्यथित हुई। बोली—"सखी, परमात्मा रक्षा करेंगे। स्वतन्त्रता की वेदी पर चढ़ाया हुआ इतना रक्त व्यर्थ न जायेगा।"

मैना आप-ही-आप बोलने लगी—"ज्वालाप्रसाद हार गये। तोपें फिरंगियों ने छीन लीं! फ़तहपुर क़ब्ज़े से निकल गया। ……बेचारे ग्रामीणों पर अमानुषिक अत्याचार हो रहे हैं। स्त्रियों को बे-इज्जत किया जा रहा है! हार-पर-हार होती जा रही है! ………और यह सब किसके कारण? …हमारे कारण बाबा के कारण! अज़ीम के कारण!"

मालती बोली—"सखी, घबराने की बात क्या है? कानपुर में महाराज का शासन अभी तक सु-व्यवस्थित है, और प्रजा प्रसन्न है, सेना दिन-पर-दिन बढ़ रही है। चिन्ता की क्या बात है?"

मैना ने कहा—"फ़िरंगी दिन-दिन बढ़ रहे हैं। एक-एक कर के गांवों पर उनका आधिपत्य हो रहा है। ज्वालाप्रसाद की बड़ी सेना पराजित हुई। फ़तहपुर भी फ़िरंगियों के हाथ में चला गया। ……अब बालराव गये हैं…।"

मालती बोली—"…हाँ, बालराव गये तो हैं! उनके साथ

बड़ी शक्ति-शाली सेना है। वीर बालराव अवश्य फिरंगियों को छिन्न-भिन्न करेंगे ...."

मैंना व्याकुल होकर बोली—"अब नहीं,—अब आशा नहीं, हमारी विजय असम्भव है !"

मालती ने कहा—"सखी, ऐसी अशुभ बात मुँह से न निकालो। यह तुम्हारा भ्रम है। हमें विजय की कामना करनी चाहिए।"

मैंना ने ठण्डी साँस भरी, और "निराशा ! निराशा !!" कह कर रह गई।

मालती समझाने लगी—"मैंना, परमात्मा सहायता करेंगे। घबरा मत। अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। उधर बालराव बड़ी सेना लेकर फिरंगियों को रोकने गये हैं। इधर कानपुर की फ़ौजें तैयार हो रही हैं। महाराज फिरंगियों से भयंकर संग्राम करने का विराट् आयोजन कर रहे हैं। वीर अज़ीमुल्लाख़ाँ भी अपनी चेष्टाओं से बाज़ नहीं हैं। महाबुद्धिमान दीवान साहब अवश्य अपने प्रयत्न में सफल होंगे।"

मैंना ने कहा—"अज़ीम की बात कहती हो मालती ?—अज़ीम डगमगा रहे हैं, उनकी दृढ़ता पिघल रही है, उनका धैर्य्य शिथिल होता जा रहा है।"

"यह कैसे ?"

"भयंकर विपत्ति के बादल उमड़ रहे हैं। क्षण-क्षण पर हार की ख़बर आ रही है। नगर की शान्ति-रक्षा के लिए कोशिश

की आवश्यकता है। ऐसे नाज़ुक मौके पर भी अज़ीम मुझे नहीं भूल सके हैं। कानपुर में रक्त की नदी बह रही थी, सैकड़ों-हजारों प्राणों को संहार हो रहा था, उस समय भी अज़ीम मुझे नहीं भुला सके थे। उन खतरनाक दिनों में भी वे रोज मेरे पास—यहाँ—आते थे, इन दौड़-धूप के और काम करने के दिनों में भी वे रोज चौबीस घण्टे में एक बार यहाँ आने से चूकते।......सच कहती हूँ मालती मुझे उनका यह आना-जाना अच्छा नहीं लगता। मुझे उनके इस नित्य के आने से बड़ा खेद होता है, और उनके आराध्य व्यक्तित्व पर मुझे दिन-दिन अश्रद्धा होती जा रही है!"

मालती चकित, स्तम्भित, अवाक् सखी का मुँह ताकती रह गई।

मैना कहने लगी—"सखी, मुझ पर अजीम का अनुराग उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। कहने का साहस नहीं करते—परन्तु मन में उनके यह भावना जरूर है कि अब वे मेरे प्रणय के अधिकारी हो गये हैं। परन्तु मुझे नित्य कलेजे पर पत्थर रखकर उन्हें—ऐसी कोई बात न चलाकर—निराश करना पड़ता है। सखी, जब तक वे यहाँ रहते हैं, मैं अनमनी होकर उनसे बात करती हूँ, जब चले जाते हैं, तो एकान्त में जाकर ख़ूब रोती हूँ।......हाय!......क्या करूँ!!"

मैना की आँखें फिर भीग गईं।

मालती कुछ सोचकर कहने लगी—"सखी, एक बात पूछूँ?"

"क्या?"

"तुम्हारा व्रत तो पूरा हो-ही गया, अब क्यों .खुद जलती हो—क्यों दूसरे को जलाती हो ?"

मैना ने एक मर्मवेधक, लम्बी साँस ली, और कुछ न बोली ।

मालती ने फिर कहा—"हाँ सखी, क्यों नहीं उन पुरानी अभिलाषाओं को पूरा करती हो ?—क्यों व्यर्थ .खून के आँसू बहाती हो ? क्यों दो अतृप्त आत्माओं को जान-बूझकर विरह-वेदना में जलाती हो ?"

मैना ने फिर उसी तरह की व्यथा-भरी, लम्बी साँस ली, और आप-ही आप कहा—"अफ़सोस ! इस जन्म में नहीं !"

मालती को यह निराश-निश्चय मैना के अन्तस्तल से निकलता मालूम पड़ा। उसने भय-ग्रस्त होकर कहा—"प्यारी मैना, आख़िर तेरे मन में है क्या ?"

—कहते-कहते मालती उठकर भागी। मैना ने उदास मुँह घुमाकर देखा—गम्भीर भाव बनाये अज़ीमुल्लाख़ाँ आ रहे हैं।

अज़ीम आकर बैठे। आज मैना ने उनका स्वागत न किया, न उसके चेहरे पर उत्फुल्लता की चमक दिखाई दी।

अज़ीम उसका यह भाव देखकर मन-ही-मन लज्जित हुए। जब मैना—उनके बैठने पर भी कुछ न बोली, तो उस लज्जा को दूर करने के अभिप्राय से अज़ीम ने बात चलाई—"बालराव अवंग पहुँच गये।"

मैना ने मानो नींद में कहा—"हूँ !"

यह क्या ? यह चिन्ता, यह गम्भीरता, यह उदासी क्यों ?

अज़ीम ने काफ़ी देर तक मैना का ध्यान भंग होने की प्रतीक्षा की। जब वह न बोली तो उन्होंने फिर स्वयं ही बात उठाई—"खबर आई है—बालराव व्यूह रचकर दुश्मनों से भयंकर संग्राम करने को तैयार हैं। आज-ही रात में, या कल सुबह—अवश्य युद्ध छिड़ जायगा।"

मैना की गम्भीरता इस पर भी दूर न हुई। अज़ीम बड़े परेशान हुए। क्या करें ?

तब खूब सोचकर उन्होंने एक बात कही—"मैना, मैं कल दिल्ली जाने का विचार कर रहा हूँ।"

यह तीर ठीक निशाने पर लगा। मैना ने तिलमिलाकर कहा—"क्या कहा ?......क्यों जा रहे हो ??"

अज़ीमुल्लाखाँ ने जबर्दस्ती मुस्कुराहट रोकी, और गम्भीर बनकर कहा—"खबर है, कि दिल्ली में बहुत अधिक देसी फ़ौजें पहुँच चुकी हैं। अगर मैं वहाँ न गया तो उद्देश्य सफल न होगा। दिल्ली के गिर्द फिरङ्गियों की फ़ौज घेरा डाले पड़ी है। मेरे वहाँ पहुंचने से सब काम ठीक तौर से पूर्ण होजायेंगे, अन्यथा एक बहुत बड़ी ताक़त फिरङ्गियों के पंजे में चूहे की तरह फँस जायगी।"

"इधर क्या होगा ?"

"किधर ? कानपुर में ?"

"हाँ..!

"इधर की कोई चिन्ता नहीं है। इधर हम काफी मजबूत हैं।

युक्त-प्रदेश पर एक प्रकार से हमारा क़ब्जा हो गया है। दिन-दिन सेना बढ़ रही है। लोग नाना साहब के शासन से बहुत संतुष्ट हैं। इधर की कुछ पर्वाह नहीं।"

"—और सेनापति हेव्लॉक—?"

"क्या ?"

"......उसका मुकाबला...... ?"

"हूँ ! वह एक साधारण बात है......!"

"ज्वालाप्रसाद तो हार गये......!"

"फिर ?"

"बारह तोपें भी छिनवा आये।"

"वह सब ठीक है। मगर इस पराजय का कारण था। हमने हेव्लॉक की शक्ति का अनुमान लगाने में गलती खाई। हेव्लॉक के साथ रेनडे की मजबूत सेना थी। ज्वालाप्रसाद की हार का यही कारण था।"

"............"

"..... अब की बार महा बलवान बालराव फिरङ्गियों को खदेड़ने भेजे गये हैं। उनके साथ हमारी सेना के छटे हुए वीर हैं। दूर तक मारने वाली भयङ्कर तोपों की एक बड़ी संख्या भी वे ले गये हैं। इस बार फिरंगियों को मुँह की खानी पड़ेगी। ......सुनता हूँ, बालराव की मोर्चाबन्दी देख-देखकर दुश्मनों के दिल पहले जा रहे हैं। हमारी जीत निश्चय है ?"

"........"

"..........बालराव निश्चय जीतेंगे। उनके लौटते-ही मैं दिल्ली चल दूँगा। दिल्ली पहुँचकर मैं भारत की स्वतन्त्रता का सन्देश अन्य देशों को भेजूंगा। रूस, इटली, जर्मनी—इत्यादि देश सब से पहले हमें अंगरेजों के पंजे से मुक्त-स्वतन्त्र मानेंगे। ...सब बात तय हो चुकी है।"

".........."

"......तुम से यही कहने आया था। दिल्ली जा रहा हूं..."

".........."

"मैना!"

"हूँ!"

"सुनती हो?"

"हूँ!"

"अब भारत आजाद है, अपनी प्रतिज्ञा मैं पूर्ण कर चुका..."

".........."

अजीम कुछ क्षण इक-टक मैना का मुँह ताकते रहे, फिर मानो उन्मत्त होकर, सहसा आगे बढ़कर, उसका हाथ थाम लिया, और काँपते हुए कहा—"तुम्हारे प्रणय का मूल्य मैंने चुका दिया, प्यारी मैना......"

मैना का हाथ मानो अनजान में दहकते कोयले पर पड़ गया। एक डरावनी और लम्बी, नागिन की-सी फुङ्कार मार कर वह दूर हट गई, और बड़े-बड़े नेत्रों में कठोरता भरकर उसने कहा—"सावधान! सावधान!!"

अज़ीम भौंचक-से खड़े रह गये।

मैना तनक कर खड़ी हो गई। चेहरा तमतमाने लगा। आँखों की सुर्खी उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। सुडौल शरीर से मानों शक्ति-तेज फूट-फूट कर निकलने लगा। उसने दृढ़ता-पूर्वक कहना शुरू किया—"अजीम! तुमने अक्षम्य धृष्टता की है! स्वर्ग के द्वार पर पहुँचकर तुम नर्क में गिर पड़े। अन्त समय में तुम्हारा पतन हो गया है। अफ़सोस! अफ़सोस!!"

धीरे-धीरे अजीम की आँखें झुकने लगीं—इतनी झुकीं कि ठुड्डी वक्ष-स्थल से छू गई। आँसुओं की दो बूंद डेढ़ गज का फ़ासला तय कर, पृथ्वी पर जा पड़ीं!

मैना तलमला गई। बड़े कष्टसे उसने अपने आते हुए आँसुओं को रोका, और थूक से गला तर कर उसी कठोर स्वर में कहती रही—"अज़ीम, तुम मेरे स्वामी हो। मैं तुम्हारी हूँ; जीती भी, मर कर भी; परन्तु सावधान! मुझे छूने का अधिकार अभी तुम्हें नहीं है। मुझे छूकर तुमने मेरा प्रण भंग किया, अपने आपको भ्रष्ट किया, और अपनी अधीरता के कारण, पुण्य को पाप, अमृत को विष, और सत् को असत् बना दिया!"

अजीमुल्ला ख़ाँ उसी प्रकार, निश्चल, निर्वाक्, खड़े रहे।

मैना ने अपने स्वर की तेजी कम न होने दी—"अज़ीम! तुम्हारे पाप का घोर प्रायश्चित करना होगा। मैं तुम्हारी अर्द्धाङ्गिनी हूं, तुम्हारा पाप मेरा पाप है। इस पाप का प्रायश्चित दोनों को करना होगा। आओ, तुम अपने हिस्से का प्रायश्चित्त करो,

मैं अपने का.........।"

अजीम पर मानों मन्त्र-प्रयोग किया गया है, वे हिलने-जुलने तक में अशक्त है !!

मैना ने उसी तरह गरजकर कहा-"अजीम, जाओ। फ़िरंगियों के हाथ से देश की रक्षा करने की प्राण-पण से चेष्टा करो। मुझे भूलकर—मेरा मोह त्याग कर—कार्य-क्षेत्र में जुट पड़ो। यही तुम्हारा प्रायश्चित्त है, और इसी से मुझे सन्तोष की प्राप्ति होगी।"

अजीम एक बार ज़ोर से हिले – या कांपे या जाने की चेष्टा की; पर जा न सके।

तब मैना ने बाग़ के दरवाजे की तरफ संकेत करते हुए कहा, "अज़ीम, यह रास्ता है। इसी समय चले जाओ।"

अज़ीम ने इस बार आँखें ऊपर उठाकर मैना को ताका, और तब मुँह फेर कर—यन्त्र-चालित पुतले की तरह, बाग़ के फाटक से निकल गये।

मैना बहुत देर तक शून्य की ओर ताकती रही, और अजीम की आँखों में उसने जो देखा था—उसकी मीमांसा करती रही।

मालती अपनी छुपी हुई जगह से निकल कर आई, तो देखा सखी की आँखों में आंसू नहीं हैं; उन्माद है, मुख पर चिन्ता नहीं है; विषाद है, शरीर में कम्पन नहीं है, अवसाद है।

मैना के समीप खड़ी मालती इस बात की मीमांसा करने लगी, कि सखी ने उसे देखा या नहीं—परन्तु अचानक......

सखी ने उसकी तरफ सिर फेरकर कहा—"प्रायश्चित करूँगी मालती, तुझे एक पत्र लाकर देती हूँ, उसे कानपुर स्वामी के पास पहुंचाना होगा। ठहर, अभी लाती हूँ।"

—कहकर मैना महल की तरफ चल पड़ी।

"तुम ?"

"हाँ मैं।"

मालती ने भयभीत होकर सखी को पुकारा—"मैना, कहाँ जाती हो ?'

मैना ने मुँह फेरे हुए कहा—"मैं प्रायश्चित्त करूँगी।"

"तुम ?"

"मैं।"

साधारण-बुद्धि मालती इस औपन्यासिक रहस्य को समझने की व्यर्थ चेष्टा करने लगी।

—: १० :—

पागल, खूनी !!

अज़ीमुल्लाखाँ हारे-से, खोये-से-धीरे-धीरे—कानपुर पहुंचे। मन पर अथाह चिन्ता और असह्य ग्लानि का बोझ था। मानो शरीर का सत्व खिंच गया, अथवा किसी ने जादू कर दिया था, छः मील के मार्ग में उन्होंने किसी आने वाले को, किसी पशु-पक्षी को,—यहाँ तक कि—किसी लता-वृक्ष-तक को नहीं देखा। लगाम हाथ में लिए हुए घोड़े की पीठ पर सवार थे। पशु ने भी मानो स्वामी की व्यथा का अनुमान कर लिया था और स्वयं भी अनमना होकर एक-एक पैर धरता हुआ जा रहा था!

अज़ीमुल्लाखाँ कानपुर में घुसे। सब तरफ़ खुशियाँ मनाई जा रही थीं। बाजार में चहल-पहल और रौनक़ थी। जगह-जगह सिपाही, देशी वर्दी पहने हुए, ड्यूटी पर तैनात थे। नगर-निवासी स्वच्छ कपड़े पहने, ताज़े और हँसते हुए चेहरे लिये, इधर-उधर घूम रहे थे। कई जगह दर्जनों आदमी गोल बाँधे बैठे थे, और बड़े उत्साह से भंग घोटी जा रही थी!

अज़ीमुल्लाखाँ को देखकर सैलानी रुक खड़े हुए, सिपाहियों ने फ़ौजी सलाम किये, बाजे वाले खड़े होकर अपना काम अधिक उत्साह से करने लगे, भंगड़ लोग मजे में आ-आकर 'जय

भङ्ग-भवानी !' 'जय नाना साहब !' 'जय दीवान साहब !' चिल्लाने लगे ।

परन्तु अज़ीमुल्लाँखाँ ने इस आमोद-प्रमोद, इस आदर-स्वागत, इस हर्ष-विनोद पर कुछ ध्यान न दिया । किसी तरफ़ की रौनक और सजावट देखने को उन्होंने एक बार अपनी गर्दन-तक न मोड़ी । घोड़ा-बढ़ाये सीधे राज-भवन की तरफ़ चले । कहें—स्वामी का कोई निर्दिष्ट संकेत न पाकर घोड़ा स्वयमेव उधर चला ।

राज-भवन के फाटक पर पहुँचकर अज़ीमुल्लाखाँ ने घोड़े की पीठ खाली की, और भीतर घुसे ।

नाना साहब मसनद के सहारे बैठे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे । अज़ीमुल्लाखाँ को देखते-ही सीधे बैठकर बोले—"आओ अज़ीम, कहाँ थे ?—अभी तुम्हें खोजता था ।"

अज़ीमुल्लाखाँ ने जवाब देना चाहा, पर इतनी देर चिन्ता-मग्न और चुप रहने के कारण गला ठस गया था, या सूख गया था । सहसा बोल न सके; बल्कि बोलने की कोशिश में उनकी दोनों आँखें भर आईं ।

तब उन्होंने जेब से रूमाल निकालकर मुँह पर फेरा । और पसीना पोंछने के बहाने कौशल-से आँखों का पानी भी रूमाल में ले लिया, थूक सटककर किसी तरह गला तर किया और नाना साहब के पास ही जाकर बैठ गये ?"

नाना साहब ने पूछा—"कहाँ गये थे ?"

उन्होंने कहा - "ज़रा यों-ही जङ्गल को तरफ़ निकल गया था।—कहिये, क्या हुक्म है।

महाराज बोले—"कुछ नहीं; अकेले बैठे-बैठे जी ऊबने लगा, अकेले बैठने का अभ्यस्त नहीं हूँ, इसी से..."

अज़ीमुल्ला ने पूछा—"बालराव का कुछ समाचार मिला?"

नाना साहब ने चिन्ता-युक्त मुद्रा-से उत्तर दिया—"नहीं, अभी तो कुछ नहीं मिला!"

अज़ीम ने कहा—"बड़े अचरज की बात है...!"

नाना साहब बोले—"अचरज कुछ नहीं, ख़बर आने का वक्त अब हुआ है!"

"देखिये तो" अज़ीम ने कहा—"कल वे लोग अवंग पहुँच गये थे, ज्यादा से ज्यादा आज सुबह युद्ध छिड़ गया होगा। इस समय तक अवश्य समाचार मिल जाना चाहिये था......!"

नाना साहब के माथे पर पसीने की बूँदें झलक आईं। कुछ चिन्ता-युक्त होकर बोले—"सम्भव है, मार-काट जारी हो, बालराव युद्ध में व्यस्त हों, समाचार भेजने का अवकाश उन्हें न मिला हो......और यह भी हो सकता है, समाचार लाने वाला-ही किसी विपत्ति में..... "

—अज़ीमुल्लाख़ाँ को निराशा से गर्दन हिलाते हुए देख, नाना साहब चुप हो गये।

अज़ीम बोले—"महाराज, लक्षण अच्छे नज़र नहीं आते!"

नाना साहब ने चौंककर पूछा—"कैसे लक्षण? क्या

कहते हो ?"

अज़ीम ने दुःख और निराशा से सिर झुकाकर कहा—"महाराज, यह बात मुँह से नहीं निकलती;.........मेरे मन में न जाने क्यों बड़ी निराशा, बड़ी थकन, बड़ी उदासी पैदा हो रही है !"

नाना साहब ने माथे का पसीना पोंछ आँखें फाड़कर पूछा—"क्या कहते हो अज़ीम ?......"

अज़ीम केवल "निराशा ! निराशा !!" कहकर रह गये ।

नाना साहब ने पुनः कहा—"अज़ीम, आखिर तुम्हारा ऐसा भाव क्यों हुआ ?"

अज़ीम ने कहा—"महाराज, अपने मुँह से वह बात कहना नहीं चाहता । ईश्वर करे, मेरा विचार असत्य हो"

नाना साहब ने कातर होकर पूछा—"अज़ीम, क्यों पहेली-सी बुझा रहे हो ! आखिर बताओ तो—तुम्हारे मन में क्या भाव पैदा हुआ है ?"

अज़ीम चिन्ता-मग्न, निस्तब्ध खड़े रहे ।

नाना साहब ने फिर उसी कातर स्वर में अपना प्रश्न दोहराया ।

अज़ीमुल्लाखाँ ने अपनी झिपझिपी आँखों से स्वामी को ताका और भरी आवाज से कहा—"महाराज, न पूछिये, कुछ देर बाद सब मालूम हो जायगा ।"

"बताओ ! बताओ !!" नाना साहब अधीर होकर बोले—

"क्या तुमने कोई समाचार पाया है ?"

अजीमुल्लाखाँ ने कहा-"महाराज, इतने अशान्त न हूजिये, मुझे कोई समाचार नहीं मिला है; अपने आप ही मेरे मन में इस भाव का उदय हुआ है।"

"क्या ?"

अजीमुल्लाखाँ ने मानों अपनी आत्मा पर बलात्कार कर, कह डाला-"महाराज, मेरा मन कहता है, बालराव हार जायेंगे।"

"हार जायेंगे ?" नाना साहब ने उछल कर कहा—"हार जायेंगे ? हार जायेंगे ?? ......नहीं ऐसा नहीं हो सकता !"

अजीमुल्लाखाँ ने कुछ उत्तर न दिया।

बहुत देर तक दोनों आदमी पत्थर के बुत की तरह चुप बैठे रहे ! तब मानों-घन्टों बीत गये हैं, इस तरह चौंक कर अजीमुल्ला खाँ बोले—"अभी तक कोई खबर नहीं ?"

उत्तर में नाना साहब के कुछ बोलने के पूर्व ही दरबान कमरे में आया, और बोला—"एक सवार घोड़ा दौड़ाता हुआ आया है; और आपके दर्शन करना चाहता है ?"

"कहाँ से आया है ?"

"सेनापति बालराव की सेना से। कहता है—अत्यन्त आवश्यक समाचार है।"

" भेजो " —सुनकर दरबान उसी तेजी से लौट गया।

सवार उपस्थित हुआ। पसीने से लथ-पथ, चेहरे पर, पैरों पर, और वर्दी पर खाक-ही-खाक; जहाँ-तहाँ खून के सूखे छींटे।

—आकर उसने बारी-बारी से नाना साहब और अज़ीमुल्लाखाँ को सलाम किया, और घबराकर—जैसे अभी रो पड़ेगा, बोला—"महाराज, बड़ा बुरा समाचार है !"

"..........?"

"सेनापति बालराव पराजित होकर लौटे आ रहे हैं। फिरंगी बढ़ रहे हैं! मुझे सेनापति ने आगे भेजा है।"

महाराज और मन्त्री, दोनों ही, उछल पड़े; और चकित, भीत स्तम्भित उनके मुँह से क्षण-भर कोई बात न निकल सकी।

तब बड़े कष्ट से नाना साहब ने पूछा—"इतनी सेना ? ....इतनी तोपें ? ....फिर हार गये ? ....कैसे हुआ यह ?"

"महाराज, सेनापति ने दुश्मनों के छक्के छुड़ा दिये थे। सूर्य उगते ही लड़ाई प्रारम्भ हो गई थी। पहर दिन चढ़े तक पूरी आशा थी, फिरंगी पीठ दिखायेंगे। ऐसे कौशल से व्यूह बाँध कर धावा किया था—कि भागने के सिवा कोई चारा न था। हमारी तोपें निर्दयता-पूर्वक दुश्मनों का संहार कर रही थीं, सिपाही लोग जान हथेली पर रखकर जूझ रहे थे......"

सिपाही के इस कविता-पूर्ण वक्तव्य से ऊब कर नाना साहब ने कहा-"असल बात बोलो, इस भूमिका की आवश्यकता नहीं।"

सिपाही ने सम्हलकर कहा—"...अन्त में फिरंगियों ने एक बार जोर से - हमला किया। हमारे सिपाही घबराकर पीछे हटे। अफ़सोस ! गोलन्दाज़ों की सुस्ती ने जीती हुई बाज़ी हार दी... !

काश ! अगर वे ज़रा फुर्ती-से काम लेते !"

नाना साहब ने अधीर होकर कहा—"बोलो ! बोलो !!"

सिपाही बोला—"सेनापति ने गोलन्दाज़ों को आज्ञा दे रखी थी कि फिरंगी आगे बढ़ने का ज़रा उपक्रम करें—तो वे सबसे पहिले अवंग का पुल उड़ा दें।......मगर वे बेवकूफ़ फिरंगियों के हमले से डरकर सब कुछ छोड़-छाड़, भाग खड़े हुए !... नालायक ! गधे ! बुज़दिल कहीं के !!...हाय ! ..हाय !!"

नाना साहब ने ज़ोर से छाती पीट ली, और एकबार भयङ्कर रूप से चीख़ पड़े—मानों किसी ने हृदय पर जलता अंगारा रख दिया !—फिर सम्हलकर पूछा—"बालराव आ रहे हैं ?"

सिपाही ने आँखों में उमड़ते हुए आँसू पोंछकर कहा—"जी हाँ, सेना सहित वे घायल-अवस्था में इधर आ रहे हैं।"

अज़ीमुल्लाखाँ इतनी देर में कुछ न बोले। इस समाचार ने उनके हृदय पर एक विचित्र और अनिर्वचनीय चोट लगाई—मानो आकाश - तक पहुँचा हुआ आशाओं का किला चूर-चूर होगया ! ज्यों-ज्यों सिपाही अपनी बात कहता जाता था—उन पर एक प्रकार की मूर्छा पड़ती जा रही थी। जब वे सब समाचार सुन चुके, और मूर्छित होकर गिर जाने की नौबत आई, तो उन्होंने एक बार कोशिश करके अपने आपको सम्हाला, और सहसा उठ खड़े हुए।

महाराज ने उनकी विकृत चेष्टा पर दृष्टिपात किया, और वे कुछ कहना ही चाहते थे—कि अजीमुल्लाखाँ एक छलाँग मारकर

कमरे से बाहर होगये।

महाराज क्षण-भर को चकित हुए। सिपाही ने कुछ न समझकर एक बार जाते हुए अजीमुल्लाखाँ को और दूसरी बार महाराज को देखा।

तब महाराज इस तरफ अधिक ध्यान न दे, सिपाही से पूछने लगे—"हाँ तो, बालराव हार गये?"

"जी हाँ!"

"गोलन्दाजों ने मूर्खता की?"

"जी हाँ, बड़ी मूर्खता और बुज़दिली·····!"

"अवंग पुल नहीं उड़ा सके?"

"जी हाँ, फिरङ्गियों की बन्दूकों की बाढ़ से डरकर भाग खड़े हुए।"

"बालराव को बहुत चोट तो नहीं लगी?"

"जी नहीं साधारण!"

"कहाँ लगी है?"

"बाँये पैर की एक अंगुली कट गई है, दांये हाथ में एक गोली लगी है; और दो-चार साधारण जख्म लगे हैं।"

नाना साहब "हूँ!" कहकर क्षण-भर को रुके, फिर बोले—"तोपें सब छिन गईं?"

"जी हाँ, पन्द्रह तोपें थीं, सब पर फिरंगियों का कब्जा हो गया!"

नाना साहब "हाय!" कहकर फिर मिनट-भर को चुप हुए,

फिर बोले—"फ़िरंगी पीछा तो नहीं कर रहे हैं ?"

"जी नहीं, उन्होंने अवंग के पुल से कुछ आगे बढ़कर डेरा डाल दिया है । मालूम होता है रात को धावा करेंगे।"

नाना साहब पुनः "हूं !" कहकर गम्भीर हो गये, और दोनों हाथ कमर पर बाँधकर कमरे में इधर-से-उधर घूमने लगे।

दस मिनट-तक वे बिना एक शब्द बोले कमरे में चहल-क़दमी करते रहे, फिर सहसा रुककर बोले—"जाओ, टीकमसिंह को भेजो !"

नाना साहब के मुख पर कठोरता और दृढ़ निश्चय का भाव था ! सिपाही एक बार सिर से पैर तक कांप उठा, फिर सिर झुका कर, और "जो आज्ञा" कहकर कमरे से बाहर हो गया।

सिपाही गया तो नाना साहब आप-ही-आप बोलने लगे—"अब मेरी बारी है। अन्तिम श्वास तक फ़िरंगियों से लड़ूँगा। जब-तक जिऊँगा, फ़िरंगियों का रक्त बहाऊँगा। मैं अन्धकार में था। फ़िरंगियों के अत्याचार ने उनकी न्याय-शीलता का पर्दा-फ़ाश कर दिया ! ऐसे पापी ! ऐसे अन्यायी ! ऐसे अत्याचारी ! जिन्होंने सैकड़ों निरपराधों को तोपों से उड़ा दिया। सैकड़ों अबोध ग्रामीणों को जीता जला दिया। वे भारत पर राज्य करें ! कभी नहीं, जीते-जी ऐसा न होने दूँगा। अब मुझे ज्ञान हो गया है, बला से ज़रा देर से हुआ ! अब यह मेरा व्यक्तिगत प्रश्न नहीं, सारे राष्ट्र और सारे देश-वासियों का प्रश्न है !"

—: ११ :—

हार की खबर

इधर अजीमुल्लाखाँ धीरे-धीरे चलकर अपने निजू घर में पहुँचे। नौकर-चाकर दौड़े—पर स्वामी का भाव देखकर ठिठक गये!

अजीमुल्लाखां शयन-कक्ष में जाकर—जूता और वर्दी पहने-ही पलंग पर पड़ गये, और अर्द्ध मूर्छितावस्था में उनकी आंखों से गर्म पानी निकलकर तकिया भिगोने लगा।

अजीमुल्लाखां बहुत देर तक उसी प्रकार निश्चल पड़े रोते रहे। न-मालूम कब तब पड़े रहते—कि एक नौकर ने कक्ष-द्वार पर खड़े होकर आहट की। चौंककर उठ बैठे। आंखें लाल थी, गाल और मूछें भीग गई थीं, चेहरे का सारा रक्त मानो सुत गया था। उन्होंने संकेत से नौकर का अभिप्राय पूछा।

नौकर, स्वामी की विकलता से सहमकर धीरे-धीरे बोला—"हूजूर, बिठूर से मालती आई है, और आपके पास आना चाहती है!"

अजीमुल्लाखां के मुँह से साश्चर्य्य निकल पड़ा—"मालती?"

फिर सम्हलकर उन्होंने नौकर से कहा—"भेजो।"

मालती आई। उसने दोनों हाथ जोड़कर अजीमुल्ला को प्रणाम

किया, और एक मजबूत कागज़ का लिफ़ाफ़ा उनके सामने रख दिया।

अज़ीमुल्लाखां ने लिफ़ाफ़ा फाड़कर खत निकाला। मैना ने भेजा था। चकित अज़ीम सांस रोककर पढ़ने लगे—

अज़ीम !

तुमने आज मेरी और अपनी प्रतिज्ञा भंग की। तुमने अपनी अधीरता के कारण अब तक के किये-कराये पर पानी फेर दिया। अफ़सोस! अफ़सोस !!

मैं तुमको एक बार पति कह चुकी हूं। सदा से तुम्हें पति मानती आयी हूँ, सदा तुम्हें पति मानती रहूंगी।

तुमने आज जो पाप किया है, उसका प्रायश्चित्त हम दोनों को ही करना होगा।

आज-तक तुमने मेरे आदेशानुसार काम किया है, मेरे सुझाये बिना तुम अपने आपको अन्धा मानते आये हो। लो, अब अपना अन्तिम आदेश भी तुम्हें भेजे देती हूं। तुम प्राण-पण से मातृ-भूमि का उद्धार करने में लगे रहना। आखिरी सांस-तक दुश्मनों को आत्म-समर्पण न करना। जब तक जीवित रहो, भारत-भूमि से फिरंगियों का लोप करने में संलग्न रहना। बस, यही तुम्हारे पाप का, तुम्हारी भूल का, तुम्हारी अधीरता का, प्रायश्चित्त है।

मेरा प्रायश्चित्त भी सुनो। जब यह पत्र तुम्हारे हाथ में पहुँचेगा······तब मैं कदाचित् इस संसार में इस रूप में न रहूँगी। बस, यही मेरा प्रायश्चित्त है।

प्यारे ! स्वामी ! नाथ ! विदा !

अभागी,

—मैना

अजीमुल्लाखाँ के हाथ से पत्र छूटकर गिर पड़ा। एक एक अक्षर मानो दहकता हुआ अंगारा था, जिसने सीधे जाकर उनके अन्तस्तल का स्पर्श किया ! एक-एक वाक्य मानो ज़हरीला तीर था, जो देखते-देखते हृदय को वेधकर निकल गया ! अजीमुल्लाखाँ तलमलाकर चिल्ला उठे, और एक बार जोर-से उछलकर दर्वाजे की तरफ़ "मैना ! मैना !!" करते दौड़े !

अज़ीमुल्लाखाँ पागल होगये !!

मालती ने मैना का पत्र जमीन से उठा लिया, और कमरे से निकलकर—आँसू पोंछती हुई—न-जाने किधर चली गई !

अजीमुल्लाखाँ पैदल-ही बिठूर की ओर दौड़े। संध्या हो आई थी। रास्ता रेत से भरा हुआ था। गर्द-गुब्बार उड़ाते हुए अज़ीम, मानो एक साँस में, छः मील का रास्ता तय कर गये, और बिठूर पहुँचकर, बाग़ के फाटक पर रुके।

साँस फूल रही थी ! पसीना टपक रहा था ! नथुने फटे जा रहे थे ! चेहरे का रक्त बाहर निकल आना चाहता था ! शरीर काँप रहा था !

पर अज़ीम को इस बद-हवासी, इस परिश्रम, इस लम्बी दौड़, इस थकान का जरा होश न था। उन्होंने बाग के फाटक पर पहुँचकर बन्द दरवाजे को देखा। उस पर मानो बड़े-बड़े अक्षरों

में लिखा था—जाती हूँ। आकाश में एक चिड़िया चहकती जा रही थी, और मानो अज़ीम को सुना-सुनाकर कह रही थी—"गई! गई !!"—बाग़ का, मार्ग का, बिठूर का, वातावरण सुस्त, निस्तब्ध, —मानो, मैना-विहीन, शोक मना रहा था!

अज़ीमुल्लाखाँ चहारदीवारी टपकर बाग में पहुँचे। यही वह सड़क है, जिस पर होकर मैं आया करता था!—यही वह पेड़ है, जिसके नीचे हम दोनों बैठा करते थे!—यही वह पत्थर है, जिस पर प्रियतमा बैठी मेरी राह ताका करती थी! यही वह घास है!—यही वह रेत है!—हाय!—सब-कुछ है, सिर्फ़ वही नहीं!—उसके बिना सब-कुछ - कुछ भी नहीं है! हाय! हाय!

अज़ीमुल्ला उस पूर्व-परिचित पत्थर के निकट घुटने टेककर बैठ गये, माथा नवाया, और तब बार-बार उसका चुम्बन करने लगे।

आख़िर दाँतों और ओठों से ख़ून बहने लगा। तब वे जाकर उस पेड़ से लिपट गये, जिसके पीछे छिपकर मैना और मालती की बातें सुना करते थे।

—फिर वे उस घास पर लोट गये, जिस पर मैना फिरा करती थी, और दाँतों से और नाख़ूनों से घास के पत्ते नोंच-नोंचकर खाने लगे, और मिट्टी खुरच खुरचकर मुँह में भरने और शरीर पर उछालने लगे।

इसके बाद सहसा वे चहार-दीवार की तरफ़ दौड़े, और एक ही छलांग में बाग़ के बाहर होगये!—और दो बार ज़ोर-

ज़ोर से "मैना ! मैना !!" पुकारकर कानपुर की सड़क पर बड़ी तेजी से दौड़ पड़े !!

कानपुर पहुँचे तो—सूरज छिपने में देर न थी। नाना साहब अबकी बार स्वयं फिरङ्गियों के सामने जाने की तैयारी कर रहे थे। बालराव और उनकी सेना लौट आई थी। सब लोग एक विचित्र घबराहट, एक अनोखी व्यस्तता, एक भयङ्कर भावी की चिन्ता-पूर्ण कल्पना से घिरे थे !

अजीमुल्लाख़ाँ सीधे राजभवन में पहुँचे। दरबान ने कहा—"महाराज नहीं हैं !"

अजीमुल्लाख़ाँ ने आंखें निकालकर दरबान को ताका। गरीब दरबान कांपकर बोला—"महाराज सेनापति जी की शुश्रूषा में व्यस्त हैं !"

अजीमुल्लाख़ाँ ने तिरस्कार-पूर्ण नेत्रों से दरबान को घूरा, और बिना कुछ बोले भीतर घुसे !

बड़े कमरे में पहुँचकर अजीमुल्लाख़ाँ एक कोने की तरफ़ चले। उधर एक चित्र लटका था। यह प्रियतमा मैना का...था !"

अजीमुल्लाख़ाँ चित्र के सामने पहुँचे; कई मिनट तक आँखें गाड़-गाड़कर पता-नहीं-क्या देखते रहे, फिर आप-ही-आप बड़बड़ाये—"तू चली गई ? मेरी बेवक़ूफ़ प्रियतमे ! मैं क्या करूं ?—कहां रहूं ?—कैसे रहूं ?

"हः ! हः ! तू बड़ी चतुर है !—नहीं चालाक है ! नहीं

बेवकूफ़ है !······हिश्त ! बेवकूफ तो मैं हूँ······तू बड़ी धोखेबाज है !······नहीं, यह भी नहीं······जाने दो—कुछ भी है, पर भली नहीं है।······पगली ! दुष्ट !······च ! च ! प्यारी !···प्यारी !···प्यारी !

तेरे-बिना मैं कुछ कर सकता हूँ ?······याद है, वे चांदनी रातें !—जब बार-बार, झुंझला-झुंझलाकर, तू मुझे षड्यन्त्र और विद्रोह का पाठ पढ़ाती थी !—और मैं······मैं उसे भूल-भूल जाता था। वाह रे। जब अपने आप मूर्ख बना था, अब तू मूर्ख बना गई !

"हुँ !···काम-चोर कहीं की···वक्त पढ़ने पर खुद तो भाग खड़ी हुई—और मुझे उपदेश देगई—देश को स्वतन्त्र करना ! ······फ़िरंगियों का नाश करना !······यह करना, वह करना ! ······मुझे-ही क्या जरूरत पड़ी है ? आप तो जान बचाकर भाग गई, मैं भट्टी में कूदूं ? वाह ! कैसा बेवकूफ मुझे समझा है !···कायर !!

"तूने मुझ पर बड़ा—भारी अन्याय किया है। मैं तेरे इस अन्याय का तिरस्कार करूंगा, प्रतिकार करूंगा !···तू गई ! क्यों ? मैंने तुझे छू लिया !······हाँ, छुआ ! छुआ !! छुआ !!! ···मूर्ख ! हजार भूलें माफ़ की······यह नहीं कर सकती थी ? ···उन भूलों में एक की वृद्धि नहीं कर सकती थी ?······सुनने वालो ! सुनो !······देखने वालों ! देखो !—इसका न्याय !

"हाँ, इस चित्र में भी तो तू-ही है !······इसे छू लूं······

चूम लूं''''''छाती से लगा लूं !''''''मेरा बदला पूरा हो जायगा''''''!"

अज़ीमुल्लाखाँ ने हाथ आगे बढ़ाकर उस चित्र को छूने की कोशिश की, पर कोशिश करने पर भी हाथ वहां तक न ले जा सके—मानो स्वप्न देख रहे हैं—चित्र बहुत पीछे सरक गया है। झल्लाकर बोले—धत्तेरे की ! अच्छा भाई, तू-ही जीती !!"

इसी समय कुछ लोगों ने कमरे में प्रवेश किया। चार देशी सिपाही ब्राह्मण-वेष-धारी दो फ़िरंगियों को पकड़े आ रहे थे !

अज़ीमुल्लाखाँ ने चिल्लाकर कहा—"क्या है ?"

एक सिपाही ने हाथ बाँधकर कहा—"हुजूर, ये लोग जनरल हेवलॉक के जासूस हैं। बीबी-घर के क़ैदियों * के साथ षड्यन्त्र कर रहे थे''''''।"

अज़ीमुल्लाखाँ ने पूछा—"क्या षड्यन्त्र ? – कैसा षड्यन्त्र ?"

सिपाही बोला—"अगर ये लोग आज न पकड़े जाते—तो रात में जनरल हेवलॉक की फ़ौजें कानपुर में घुस आतीं। बीबी-घर के क़ैदियों से ये लोग गुप्त मार्गों के विषय में परामर्श कर रहे थे''''''।"

अज़ीमुल्लाखाँ ने बारी-बारी से दोनों जासूसों को घूरा, और तब सिर हिलाते हुए बोले—"कहो बच्चू ! कैसे फँसे ! कहाँ गई जासूसी ?"

---

* सती चौरा के हत्याकाण्ड से बचे हुये फ़िरंगी—स्त्री-पुरुष-बच्चे ही बीबी-घर के क़ैदी थे !

अफ़सोस! स्वतन्त्रता के उन्मत्त पुजारियों को हर बार भारी नुक़सान के साथ पीछे हटना पड़ा, आज़ादी के दीवानों का गर्म .खून आज़ादी के सूखे पौदे को सींचने में व्यर्थ होने लगा!!

इस १७ जुलाई को हज़ारों असफल देश-भक्तों का नाम-निशान मिट गया, और एक .खूनी और अत्याचारी जनरल का नाम अंग्रेजी-इतिहास में सदा के लिये अमर हो गया इस अमर अत्याचारी के अत्याचार का दिग्दर्शन निम्न उद्धरण से करते हैं:-

"जनरल हेवलॉक ने सर ह्यू ह्वीलर की मृत्यु के लिये भयङ्कर बदला चुकाना शुरू किया। हिन्दुस्तानियों के गिरोह-के-गिरोह फाँसी पर चढ़ गये।......सबसे पहिले गोरे और सिक्ख सिपाहियों को नगर लूटने की आज्ञा दी गई। इसके बाद फाँसियों का बाज़ार गर्म हुआ। लिखा है—कि बीबीगढ़ की ज़मीन के ऊपर .खून का एक बड़ा धब्बा था। सन्देह था कि यह .खून गोरी मेमों और बच्चों का है। शहर के अनेक ब्राह्मणों को लाकर जिनपर 'सन्देह था' कि उन्होंने विप्लव में भाग लिया है, उन्हें उस .खून को जबान से चाटने और फिर झाड़ू से धोकर साफ़ करने की आज्ञा दी गई। इसके बाद इन लोगों को फाँसी दे दी गई। उस समय के एक अंग्रेज अफसर ने इस अनोखे दण्ड का कारण इस प्रकार बयान किया है:—

"मैं जानता हूँ कि फ़िरंगियों के .खून को छूने और मेहतर की झाड़ू से साफ़ करने से एक उच्च-जाति का हिन्दू पतित हो जाता है। केवल इतना-ही नहीं, चूंकि मैं यह जानता हूँ, इसीलिए मैं

उनसे ऐसा कराता हूं। जब तक हम उन्हें फाँसी देने से पहिले उनके समस्त धार्मिक भावों को पैरों-तले न कुचलेंगे, तब तक हम पूरा बदला नहीं ले सकते, ताकि उन्हें यह सन्तोष न हो सके कि हम हिन्दू-धर्म पर कायम रहते हुए मरे।"

फ़िरंगियों ने दीन ग्रामीणों पर, निर्दोष नागरिकों पर, निर-पराध सिपाहियों पर, कैसे-कैसे पाशविक अत्याचार किये—उन सब का उल्लेख करके एक औपन्यासिक अपनी मध्यस्थता पर कलंक नहीं लगने देगा। बस, इतना-ही काफ़ी है—कि प्रतिहिंसा की आग में जलते हुए फ़िरंगियों ने भीषण उदारता-पूर्वक हिन्दु-स्तानियों का रक्त बहाया, सैकड़ों निरपराध मनुष्यों को फाँसी पर लटकाकर और उनकी फटी हुई आँखें, निकली हुई देहें देख-देख कर अच्छी तरह अपना कलेजा ठंडा किया !!

अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर, नाना साहब कहीं ग़ायब हो गये !

अंगरेजी-इतिहासों में नाना साहब के पलायन के सम्बन्ध में कहा गया है—कि नाना साहब अपने कुटुम्बीजनों को साथ लेकर रातों-रात बिठूर से रवाना हुए। गङ्गा के घाट पर पहुँचकर सब लोग एक नाव में बैठे। उस अँधेरी रात में भी घाटपर अनेक राज-भक्त पुरुषों का जमाव होगया। नाना साहब ने नाव के एक किनारे पर लगा हुआ दीपक जला दिया, और किनारे पर खड़े हुए लोगों को पुकारकर कहा—"मेरे जाँनिसार भाइयो, मैंने आपके असंख्य मित्रों और सम्बन्धियों का खून बहाया, मेरे-ही कारण आप को धन और शान्ति की क्षति उठानी पड़ी, मेरे-ही कारण

आपकी ललनाओं का अपमान हुआ, और अब मेरे-ही कारण आप में-से बहुत-सों को फांसी पर लटका दिया जायगा। मै इस दृश्य को अपनी आँखों से नहीं देखना चाहता, इसलिए गंगा में डूबकर अपना और अपने कुटुम्ब का ख़ात्मा किये देता हूँ। जब हमारी नाव डूबेगी, तो यह दीपक बुझ जायगा। आप लोग हमें क्षमा प्रदान करें।"

राज-भक्त ग्रामीणोंने बड़ी कोशिश की, बड़ी अनुनय की, कि नाना साहब इस प्रकार अपना और अपने कुटुम्बियों का प्राण-नाश न करें, अनेक उन्हें सुरक्षित और छुपाये रखने को भी तैयार हुए, अनेक उनकी तरफ़ से पुनः लड़ने को तैयार हुए। परन्तु नाना साहब ने हाथ जोड़कर, गद्गद् कण्ठ से सब प्रार्थनाएं अस्वीकृत कीं।

अंगरेज-इतिहासज्ञ कहते हैं—कि नाना साहब इस प्रकार सबकी आँखों में धूल झोंककर, और अपनी जान बचाकर कहीं चल दिये। कहाँ गये ?—इसका किसी इतिहास में उल्लेख नहीं है। अस्तु—

नाव चलदी, और गंगा के बीचों-बीच जाकर दीपक बुझ गया। लोगों ने परमात्मा से नाना साहब और उनके कुटुम्ब की आत्मा को शान्ति प्रदान करने की प्रार्थना की।

परिशिष्ट

घनघोर जंगल और भयंकर अँधेरी रात............

एक झोपड़ी है—सारे जंगल में अकेली। पाँच-सात दिन पहले-ही बनी मालूम होती है।

झोपड़ी साधारण झोपड़ियों से बहुत-अधिक बड़ी है; इतनी बड़ी है—कि फूस का एक-मञ्जिला घर कहें, तो भी अनुपयुक्त न होगा।

भीतर तीन भाग हैं।—एक स्त्रियों के सोने का, दूसरा पुरुषों का, तीसरा भण्डार-घर या रसोई-घर।

मर्दाने भाग में कई आदमी सोये हैं। इस अँधेरे में हम नाना साहब और अज़ीमुल्लाखाँ को पहिचान सकते हैं। बाकी कौन हैं?—यह न हम जानते हैं, न जानने से प्रयोजन! जनाने भाग में कई स्त्रियाँ हैं—पर मैना नहीं है, इसका हमें निश्चय है।

अज़ीमुल्लाखाँ का पागलपन दूर नहीं हुआ है—नाना साहब के पलायन के बाद वे संयोगवश इन्हें मिल गये, और कई दिन से यहीं रहते हैं।

आधी रात थी। सहसा अज़ीमुल्लाखाँ सोते-सोते जोर से

उछले, और उनकी नींद टूट गई। न-मालूम नींद में क्या देखा!—या क्या हुआ—कि मिनट-भर बाद-ही वे चुपके-चुपके शय्यासे नीचे उतर गये। खूँटी पर उनकी वही फौजी वर्दी टँगी थी जिसे पहनकर उन्होंने कानपूर छोड़ा था। बहुत धीरे-धीरे हाथ बढ़ाकर उन्होंने वर्दी उतारकर पहनी, एक कोने में रक्खी हुई कटार कमर में खोंसी, और बिना आहट किये—चोरों की तरह—टट्टी हटाकर झोपड़े-से बाहर हो गये!

पागल अज़ीमुल्लाखाँ क्या करेंगे?

कानपुर इस जगह से आठ मील है और बिठूर बाईस मील। बिठूर को रास्ता कानपुर में होकर जाता है। अजीमुल्लाखाँ साँस रोककर कानपुर की तरफ दौड़े।

अजीमुल्लाखाँ की दौड़ कोई देखता—तो अचरज करता। पैर मानो पृथ्वी पर पड़ते-ही नहीं थे। चार पाँव का घोड़ा भी चौकड़ी भरकर उनसे आगे न निकल सकता?—बस, एक बिठूर पहुँचने की लगन थी;—पैर लहू-लुहान होगये—पर्वाह नहीं, नाक से खून बहने लगा—चिन्ता नहीं, वर्दी पसीने से भरकर बोझल होगई—ख़्याल भी नहीं!

भागा-भाग—भागा-भाग अजीमुल्लाखाँ एक घण्टे में कानपुर पहुँच गये। भीतर गये। देखा—सब जगह गोरे सन्त्री हैं—परन्तु विजय के मद और गर्मी की रात की मीठी हवा ने सबको ग़ाफ़िल बना रक्खा है। आगे बढ़े। देखा—परेड का मैदान है। दर्जनों फाँसियाँ गड़ी हुई हैं, और उन पर काली डरावनी लाशें

झूल रही हैं। आगे बढ़े। एक जगह बड़ी फिसलन हो रही है। ध्यान से देखा—,ख़ून है! उससे आगे बढ़े। देखा—दो गोरे किसी स्त्री को जबर्दस्ती उठाये कहीं ले जा रहे हैं। स्त्री चिल्लाने की चेष्टा करती है, परन्तु मुँह बन्द के होने कारण विवश है!

अज़ीमुल्लाखाँ ठठाकर हँस पड़े। रात के सन्नाटे में उनकी वह अट्टहास पूर्ण ध्वनि दूर-दूर तक पहुँची। गोरे चौंककर खड़े होगये। पर इस अट्टहास की ध्वनि की मीमांसा करने के पूर्व-ही दोनों अजीमुल्लाखाँ की कटार के मूक शिकार बन गये! स्त्री अच-कचाकर अपने रक्षक को देखने लगी। अज़ीम ने उसे धक्का देकर तिरस्कार पूर्वक कहा—"मैंने तेरी रक्षा के लिये इन्हें नहीं मारा है—प्यारी······के आदेशानुसार ग़दर की आग में,········ प्यारी······के नाम पर फ़िरंगियों की अन्तिम रक्ताञ्जलि है—स्वतन्त्रता की देवी के चरणों में······ फ़िरंगियों के ख़ून की यह आखिरी बूंद चढ़ाई है।···खड़ी क्या देखती है?—जा भाग!

स्त्री भयभीत होकर भाग गई।

तब अज़ीमुल्लाखाँ बिठूर की तरफ़ दौड़े।

वही रास्ता, वही पेड़, वही घास, वही हवा, वही पत्थर,—सब—एक-एक करके—दौड़ते-दौड़ते—अज़ीम की आँखों आगे-नाचने लगे।—और वही मैना?

—मैना की सूरत साफ-साफ उन्हें दिखाई न देती थी।

मानों—मैना स्वर्ग की देवी है—और वे राक्षस,—उन्हें उसको देखने का अधिकार नहीं है। और अगर स्वप्न सच्चा हुआ—तो?

हाँ, स्वप्न सच्चा-ही हुआ। चहार-दीवार से लगी हुई, वह है, दर्वाजे के पास—वह है दहकती हुई चिता, हाँ, इसमें-ही जीती जला दी गई है वह!—यहीं उन राक्षसों ने अपनी पाशविकता का परिचय दिया है!!—यहीं उस प्यारी का फूल-सा कोमल गात...... ...!!! आह!

अजीमुल्लाखाँ एक छलाँग में चिता के समीप पहुँच गये। लपटें तो नहीं थीं—मगर लकड़ी के मोटे कुन्दे तब तक दहक रहे थे।

—पर मैना राख हो चुकी थी!—चाँदी की प्रतिमा मिट्टी में मिल चुकी थी!!—एक विशाल आत्मा मर्त्य-लोक का त्याग कर गई थी!!!

अजीमुल्लाखाँ कई मिनट निस्तब्ध खड़े चिता की दहकती आग में मानों कुछ पढ़ते रहे, या किसी आदेश की प्रतीक्षा करते रहे!

उन्होंने कुछ पढ़ा या नहीं—अथवा कोई आदेश आया या नहीं—लेखक इस विषय में कुछ नहीं जानता—पर तीन चार मिनट पत्थर की तरह खड़े रहकर उन्होंने जो किया उसे, उपस्थित रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति देख सकता था!

उन्होंने एक बार कातर होकर जोर-से-कहा—"मैना!......

प्यारी ! मैं आया······!!" तब उन्होंने दाँये हाथ में कटार ली, बाँयें से सिर के बाल कसकर पकड़े—और एक बार, फिरंगियों का नाश !" कहकर कटार जोर-से गर्दन पर फेर ली !!

एक हाथ में अपना कटा हुआ सिर था, दूसरे में कटार, और रक्त की तीन लम्बी मोटी पिचकारियाँ छूट रही थीं !! इसी अवस्था में वे दहकती चिता में जा पड़े !!!

पास के पेड़ पर बैठा हुआ उल्लू कलेजा फाड़कर रो उठा !!!

बस ख़तम हुआ !